1.पौराणिक, वैदिक और शास्त्री एक ही है। इनमें कोई भेद नहीं क्योंकि धर्ममय वृक्ष के वेद मूल हैं, शास्त्र शाखा हैं, पुराण पत्ते हैं, काव्य और प्रकरण ग्रन्थ ही पुष्प हैं तथा अभ्युदय फल है तथा कल्याण ही उसका रस है। मूल के बिना वृक्ष का अस्तित्व नहीं। अतः रुद्रयामल तन्त्र, श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्मृतिग्रन्थ, भविष्य पुराण आदि में वेदों को स्वतः प्रमाण तथा अन्य को परतः प्रमाण की संज्ञा दी गयी है।

वेदमूल धर्म की शाखा व्याकरण, निरुक्त आदि वेदांग शास्त्र हैं जो इसे समझने में सहायता करते हैं। पुराण वेदवाक्यों को अपनाने का सुपरिणाम और उल्लंघन के दुष्परिणाम के दृष्टान्त देकर समझाते हैं, काव्य उनके प्रचार का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। अतः "अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः" में क्रमशः वेद, शास्त्र, पुराण तथा काव्य का ही संकेत है।

पुराण विरोधी आर्य समाजी जन वेदसमर्थन का दावा करने पर भी धर्मवृक्ष का छेदन करने वाले ही हैं क्योंकि शाखा पत्रादि के अभाव में मूल का पोषण नहीं हो पाता। बीज भी अपने विकास हेतु प्रथम पत्रादि का ही सृजन करता है। वेदनिंदक बौद्ध जैनादि पौराणिक पात्र तथा कथानकों का समर्थन करने पर भी धर्मवृक्ष का छेदन करने वाले ही हैं क्योंकि इस संसार में वेद से इतर कुछ भी नहीं। इस संसार में स्वतः प्रमाण वेद भगवान का समर्थन और प्रतिपादन न करने वाला वाक्य मान्य और प्रामाणिक नहीं।

अतः एक सच्चा वैदिक वही है जो पुराण द्वेष न करे क्योंकि वेदों के पोषक पुराण ही हैं।एक सच्चा पौराणिक वही है जो वेद निंदा न करे क्योंकि वेद सभी तत्वों के मूल हैं। एष धर्मः सनातनः। इत्यलम् । ॐ ॐ ॐ...

2.प्रारब्ध

एक गुरूजी थे । हमेशा ईश्वर के नाम का जाप किया करते थे । काफी बुजुर्ग हो गये थे । उनके कुछ शिष्य साथ मे ही पास के कमरे मे रहते थे ।

जब भी गुरूजी को शौच; स्नान आदि के लिये जाना होता था; वे अपने शिष्यो को आवाज लगाते थे और शिष्य ले जाते थे ।

धीरे धीरे कुछ दिन बाद शिष्य दो तीन बार आवाज लगाने के बाद भी कभी आते कभी और भी देर से आते ।

एक दिन रात को निवृत्त होने के लिये जैसे ही गुरूजी आवाज लगाते है, तुरन्त एक बालक आता है और बडे ही कोमल स्पर्श के साथ गुरूजी को निवृत्त करवा कर बिस्तर पर लेटा जाता है । अब ये रोज का नियम हो गया ।

एक दिन गुरूजी को शक हो जाता है कि, पहले तो शिष्यों को तीन चार बार आवाज लगाने पर भी देर से आते थे । लेकिन ये बालक तो आवाज लगाते ही दूसरे क्षण आ जाता है और बडे कोमल स्पर्श से सब निवृत्त करवा देता है ।

एक दिन गुरूजी उस बालक का हाथ पकड लेते है और पूछते कि सच बता तू कौन है ? मेरे शिष्य तो ऐसे नही हैं ।

वो बालक के रूप में स्वयं ईश्वर थे; उन्होंने गुरूजी को स्वयं का वास्तविक रूप दिखाया।

गुरूजी रोते हुये कहते है : हे प्रभु आप स्वयं मेरे निवृत्ती के कार्य कर रहे है । यदि मुझसे इतने प्रसन्न हो तो मुक्ति ही दे दो ना ।

प्रभु कहते है कि जो आप भुगत रहे है वो आपके प्रारब्ध है । आप मेरे सच्चे साधक है; हर समय मेरा नाम जप करते है इसलिये मै आपके प्रारब्ध भी आपकी सच्ची साधना के कारण स्वयं कटवा रहा हूँ ।

गुरूजी कहते है कि क्या मेरे प्रारब्ध आपकी कृपा से भी बडे है; क्या आपकी कृपा, मेरे प्रारब्ध नही काट सकती है ।

प्रभु कहते है कि, मेरी कृपा सर्वोपरि है; ये अवश्य आपके प्रारब्ध काट सकती है; लेकिन फिर अगले जन्म मे आपको ये प्रारब्ध भुगतने फिर से आना होगा । यही कर्म नियम है । इसलिए आपके प्रारब्ध स्वयं अपने हाथो से कटवा कर इस जन्म-मरण से आपको मुक्ति देना चाहता हूँ ।

ईश्वर कहते है: प्रारब्ध तीन तरह के होते है । मन्द, तीव्र तथा तीव्रतम ।
मन्द प्रारब्ध मेरा नाम जपने से कट जाते है । तीव्र प्रारब्ध किसी सच्चे संत का संग करके श्रद्धा और विश्वास से मेरा नाम जपने पर कट

जाते है । पर तीव्रतम प्रारब्ध भुगतने ही पडते है।
लेकिन जो हर समय श्रद्धा और विश्वास से मुझे जपते हैं; उनके प्रारब्ध मैं स्वयं साथ रहकर कटवाता हूँ और तीव्रता का अहसास नहीं होने देता हूँ ।

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा शरीर ।
तुलसी चिन्ता क्यों करे, भज ले श्री रघुबीर।।

---

3. आपत्सु रामः समरेषु भीमः दानेषु कर्णश्च नयेषु कृष्णः ।
भीष्मः प्रतिज्ञापरिपालनेषु विक्रान्तकार्येषु भवाञ्जनेयः ॥

(हे मनुष्य) !! तुम दुःख में श्री राम के समान धीर , युद्ध में भीम के समान विनाशक , दान में कर्ण के समान उदार, राजनीति में श्री कृष्ण के समान नेतृत्वकर्ता, प्रतिज्ञापालन में भीष्म के समान दृढ़ और पराक्रमी कार्यों में अंजनीपुत्र हनुमान के समान वीर बनो ।

---

4. चार प्रकार की कृपा होती है?
ईश्वरकृपा, शास्त्रकृपा, गुरुकृपा और आत्मकृपा।
ईश्वरकृपाः ईश्वर में प्रीति हो जाये, ईश्वर के वचनों को समझने की रूचि हो जाये, ईश्वर की ओर हमारा चित्त झुक जाये, ईश्वर को जानने की जिज्ञासा हो जाये यह ईश्वर की कृपा है।

शास्त्रकृपाः शास्त्र का तत्त्व समझ में आ जाये, शास्त्र का लक्ष्यार्थ समझ में आने लग जाये यह शास्त्रकृपा है।

गुरुकृपाः गुरु हमें अपना समझकर, शिष्य, साधक या भक्त समझकर अपने अनुभव को व्यक्त करने लग जायें यह गुरुकृपा है।

आत्मकृपाः हम उस आत्मा परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त हो जायें, अपने देह, मन, इन्द्रियों से परे, इन सबको सत्ता देने वाले उस अव्यक्त स्वरूप को पहचानने की क्षमता हममें आ जायें यह आत्मकृपा है।

आत्मज्ञान हो लेकिन ज्ञान होने का अभिमान न हो तो समझ लेना की आत्मकृपा है। अपने को ज्ञान हो जाये फिर दूसरे अज्ञानी, मूढ़ दिखें और अपने को श्रेष्ठ मानने का भाव आये तो यह ज्ञान नहीं, ज्ञान का भ्रम होता है क्योंकि ज्ञान से सर्वव्यापक वस्तु का बोध होता है। उसमें अपने को पृथक करके दूसरे को हीन देखने की दृष्टि रह ही नहीं सकती। फिर तो भावसहित सब अपना ही स्वरूप दिखता है।

गर्मी-सर्दी देह को लगती है, मान-अपमान, हर्ष-शोक मन में होता है तथा राग-द्वेष मति के धर्म होते हैं यह समझ में आ जाये तो मति के साथ, मन के साथ, इन्द्रियों के साथ हमारा जो तादात्म्य जुड़ा है वह तादात्म्य दूर हो जाता है। शरीर चाहे कितना भी सुडौल हो, मजबूत हो, मन चाहे कितना भी शुद्ध और पवित्र हो, बुद्धि एकाग्र हो लेकिन जब तक अपने स्वरूप को नहीं जाना तब तक न जाने कब शरीर धोखा दे दे? कब मन धोखा दे दे? कब बुद्धि धोखा दे दे? कोई पता नहीं। क्योंकि इन सबकी उत्पत्ति प्रकृति से हुई

है और प्रकृति परिवर्तनशील है।

संसार की चीजें बदलती हैं। शरीर बदलता है। अन्तःकरण बदलता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि से जो कुछ देखने में आता है वह सब व्यक्त है। भूख-प्यास भी तो मन से देखने में आती है। सर्दी-गर्मी का पता त्वचा से चलता है किन्तु उसमें वृत्ति का संयोग होता है अतः वह भी तो व्यक्त ही है। इसीलिए भगवान कहते हैं किः 'जो मूढ़ लोग हैं वे मेरे अव्यक्त स्वरूप को नहीं जानते और मुझे जन्मने-मरने वाला मानते हैं।

साभार :- पण्डित रमेश चंद्र 'शास्त्री'

---

5. *क्या बुद्ध विष्णु के अवतार थे ?*

बहुतायत से ऐसे लोगों की संख्या विश्व में व्याप्त है, जो बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं | वहीं कई ऐसे लोग हैं, जो बुद्ध को भगवान का अवतार स्वीकार ही नहीं करते | अस्तु, प्रथम तो हम बुद्ध शब्द पर ध्यान देते हैं | बुद्ध का शाब्दिक अर्थ है, जागृत होना, सतर्क होना तथा जितेन्द्रिय होना | वस्तुतः बुद्ध एक व्यक्तिविशेष का परिचायक न होकर स्थितिविशेष का परिचायक है | वर्तमान समय में बुद्ध शब्द का व्यापक प्रयोग राजकुमार सिद्धार्थ के परिव्राजक रूप के लिए किया जाता है | हमारे धर्मग्रन्थ तथा ऋषियों ने इस सन्दर्भ में क्या कहा है, इस बात की चर्चा आज हम करेंगे |
सनातन धर्म की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही बड़ी उदार है | हमारे यहाँ किसी भी विषय, सिद्धांत और मत पर व्यापक चर्चा एवं विमर्श का स्थान उपलब्ध है | इसीलिए हमारे धर्मशास्त्रों में एक अंग दर्शनग्रन्थ का भी है | दर्शन का अर्थ है, देखन | यहाँ दर्शन का अर्थ है, धर्म को देखने का नजरिया | आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन, दोनों की व्यवस्था हमारे यहाँ की गयी है, क्योंकि यदि अन्धकार न रहे तो प्रकाश की परवाह कौन करे ? अज्ञान न रहे तो ज्ञान का महत्व कैसे प्रतिपादित होगा ? आस्तिक दर्शन में पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, सांख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक दर्शन का नाम आता है, तथा नास्तिक दर्शन में बौद्ध, जैन तथा चार्वाक दर्शन का |
एक भ्रम लोगों में बहुतायत से व्याप्त है कि गौतम ही बुद्ध थे | एक दूसरा भ्रम यह भी व्याप्त है कि गौतम बुद्ध नहीं थे, बल्कि बुद्ध कोई और थे | जबकि सत्य यह है कि गौतम ही नहीं, गौतम भी बुद्ध थे | वस्तुतः बुद्ध एक नहीं बहुत हैं | जैसे कि पूर्व में बताया गया कि बुद्ध मात्र एक स्थिति विशेष का नाम है, तो उस स्थिति में पहुँचने वाला हर प्राणी बुद्ध कहलाया | ग्रंथों में गर्ग मुनि इत्यादि के मत का वर्णन आता कि तीन अवतार ऐसे हैं, जो हर द्वापर तथा कलियुग में होते है | ये तीन अवतार हैं, व्यास, बुद्ध तथा कल्कि | शेष सभी अवतार कल्प में एक बार होते हैं | इनमें व्यास का कार्य है, वेदों का विभाजन, पुराणों का संकलन, तथा ग्रंथों का संरक्षण | बुद्ध का कार्य है, समाज में जो लोग धर्म के नाम पर पाखंड तथा पशुहिंसा आदि करें, ऐसी आसुरी सम्पदा से युक्त पुरुषों को मायामय उपदेश के द्वारा सनातन से विमुख करना, जैसे किसी फोड़े को शरीर से काट कर इसीलिए अलग कर दिया जाता है कि वह अन्य अंगो को नुकसान न पहुंचा सके | कल्कि का उद्देश्य है, बौद्ध, जैन तथा म्लेच्छों का विनाश करके पुनः विशुद्ध सनातन को स्थापित करना तथा व्यवस्था परिवर्तन करना |
पौराणिक, वैदिक और शास्त्री एक ही है। इनमें कोई भेद नहीं क्योंकि धर्ममय वृक्ष के वेद मूल हैं, शास्त्र शाखा हैं, पुराण पत्ते हैं, काव्य और प्रकरण ग्रन्थ ही पुष्प हैं, अभ्युदय फल है तथा कल्याण ही उसका रस है। मूल के बिना वृक्ष का अस्तित्व नहीं। अतः रुद्रयामल तन्त्र, श्रीमद्देवीभागवत महापुराण, स्मृतिग्रन्थ, भविष्य पुराण आदि में वेदों को स्वतः प्रमाण तथा अन्य को परतः प्रमाण की संज्ञा दी गयी है। वेदमूल धर्म की शाखा व्याकरण, निरुक्त आदि वेदांग शास्त्र हैं जो इसे समझने में सहायता करते हैं। पुराण वेदवाक्यों को अपनाने का सुपरिणाम और उल्लंघन के दुष्परिणाम के दृष्टान्त देकर समझाते हैं, काव्य उनके प्रचार का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। अतः "अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः" में क्रमशः वेद, शास्त्र, पुराण तथा काव्य का ही संकेत है।

पुराण विरोधी आर्य समाजी जन वेदसमर्थन का दावा करने पर भी धर्मवृक्ष का छेदन करने वाले ही हैं क्योंकि शाखा पत्रादि के अभाव में मूल का पोषण नहीं हो पाता। बीज भी अपने विकास हेतु प्रथम पत्रादि का ही सृजन करता है। वेदनिंदक बौद्ध जैनादि पौराणिक पात्र तथा कथानकों का समर्थन करने पर भी धर्मवृक्ष का छेदन करने वाले ही हैं क्योंकि इस संसार में वेद से इतर कुछ भी नहीं। इस संसार में स्वतः प्रमाण वेद भगवान का समर्थन और प्रतिपादन न करने वाला वाक्य मान्य और प्रामाणिक नहीं। अतः एक सच्चा वैदिक वही है जो पुराण द्वेष न करे क्योंकि वेदों के पोषक पुराण ही हैं । एक सच्चा पौराणिक वही है जो वेद निंदा न करे क्योंकि वेद सभी तत्वों के मूल हैं। बुद्ध एक नहीं हुए हैं | सहस्रों बुद्धों का आगमन हो चूका है, तथा सहस्रों बुद्ध आयेंगे | इसीलिए वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड में बौद्ध को चोरों की भांति दंड देने कि बात आई है | इससे सिद्ध होता है कि वाल्मीकि के आगमन से पूर्व भी बौद्ध मत था | प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, कुशल, मैत्रेय, गौतम, कश्यप, शक्र, अर्यमा, शाक्यसिंह , क्रतुभुक, कृती, सुखी, शशांक, निष्णात, सत्व, शिक्षित, सर्वग्य,

सुनत, रुरु, मारजित्, बुद्ध, प्रबुद्ध आदि कई बुद्ध का वर्णन आता है | इनमें वर्तमान कलियुग में बुद्ध के तीन अवतार हुए | भगवान् बुद्ध , सिद्धार्थ बुद्ध और गौतम बुद्ध तीनों अलग अलग हैं , भगवान् बुद्ध 2102-1982 ई पू में हुए , सिद्धार्थ बुद्ध 1887-1807 ई पू में हुए और गौतम बुद्ध 563-483 ई पू में हुए | अर्थात, गौतम ही नहीं, गौतम भी बुद्ध हैं |

अब बौद्धावतार का कारण बताते हैं |

मिश्रदेशोद्भवाम्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः ..... शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम् | यज्ञैश्च पूजयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् ..... अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौयुगे ..... कीकटे देशमागत्य ते सुरा जज्ञिरे क्रमात् | वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् ..... वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुराः कुष्ठिनोभवन् ..... विष्णुदेवमुपागम्य तुष्टुवुर्बौद्धरूपिणम् | (भविष्य पुराण)|

कलियुग के आने पर मिस्र देश में उत्पन्न कश्यप गोत्रीय म्लेच्छों ने शिखा रख कर तथा जनेऊ धारण करके स्वयं को ब्राह्मण घोषित कर दिया तथा स्वयं भी वेदपाठ करते हुए देवताओं का पूजन करने तथा कराने लगे | इससे त्रस्त होकर देवताओं ने देवराज इंद्र के समक्ष जाकर समाधान हेतु निवेदन किया | देवराज ने उनकी प्रार्थना पर उन असुर म्लेच्छों को मोहित करने के लिए बौद्धमार्ग का विस्तार करके वेदों कि निंदापरक ग्रंथों को लिखने के लिए बारहों आदित्य के साथ कीकट में अवतार लिया | वेदनिन्दा करने के कारण उन्हें कुष्ठ हो गया अतः वे समस्त देवगण बुद्धरूपधारी विष्णु जी के पास गए जिन्होंने अपने योगबल से उनका रोगनाश किया | तो वस्तुतः बुद्ध का आगमन सनातन धर्म के अंदर जिन म्लेच्छों ने घुसपैठ कर रखी थी, उनके विनाश के लिए हुआ था |

श्रीमद्भागवत में भी वर्णन है "धर्मद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां......वेषं विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्य" तथा "ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् | बुद्धो नाम्नाजिन सुतः, कीकटेशु भविष्यति" | असुरों को मोहित करने के लिए बुद्ध का अवतार हुआ था | सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि का उपदेश देने के कारण उन्हें अधार्मिक तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु वेद तथा ईश्वर निंदक होने के कारण वे धार्मिक भी नहीं कहलाये | अतः उन्हें उपधार्मिक कहा गया है |

कुछ अन्य जन यह बात भी करते हैं कि वस्तुतः विष्णु के अवतारों में पहले बलराम तथा कृष्ण को अलग अलग गिना गया था तथा बाद में आदि गुरु शंकराचार्य जी ने बलराम को हटा कर बुद्ध को सम्मिलित कर दिया | लेकिन इसका कोई प्रमाण न आदिशंकराचार्य जी के किसी ग्रन्थ में में मिलता है और न ही वर्तमान में किसी शांकरपीठ के पास इसका प्रमाण है | साथ ही कभी शंकराचार्य जी ने भी नहीं कहा कि बुद्ध विष्णु के अवतार नहीं थे और न ही दलाई लामा इसे अस्वीकार करते हैं | हाँ, इस बात के कई प्रमाण अवश्य हैं कि तंत्रग्रंथों तथा पुराणों में शंकराचार्य जी के आगमन से बहुत पूर्व से ही विष्णु भगवान के बौद्धावतार की बात कही गयी थी | और श्रीमद्भागवत आदि कई ग्रन्थों में बलराम जी को अवतारों की सूची से हटाये बिना ही बौद्धावतार का उल्लेख है | ऐसे ही प्रमाण देवीभागवत, विष्णु पुराण, स्कन्द पुराण, नृसिंह पुराण आदि में भी प्राप्य हैं |

अस्तु | अब लोग बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार तो स्वीकार कर लेंगे परन्तु यह कहेंगे कि यहाँ तो कीकट प्रान्त में अजिन के पुत्र के रूप में वर्णन हैं | फिर हम गौतम को क्यों माने कि वे बुद्ध थे और भगवान के अवतार थे ? इसका प्रमाण भी पुराणों में प्राप्य है |

एतस्मिनैव काले तु कलिना संस्मृतो हरिः | काश्यपादुद्भवो देवो गौतमो नाम विश्रुतः | बौद्धधर्मं समाश्रित्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः | (भविष्य पुराण)

कलियुग की प्रार्थना पर काश्यप गोत्र में भगवान विष्णु ने गौतम के नाम से अवतार लेकर बौद्धधर्म का विस्तार करते हुए पटना चले गये |

पुनः लोग यह शंका करेंगे कि हमें राजा शुद्धोदन का भी नाम चाहिये, तो इसका प्रमाण भी उपलब्ध होता है |

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः | प्रावृतं तरसा मायादेवीमानेतुमाययौ .... बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः | योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः | (कल्कि पुराण])

इस प्रसंग में वर्णन है कि जब कल्कि जी बौद्धों और म्लेच्छों का विनाश करने लगेंगे तो बुद्ध, उनके पिता शुद्धोदन तथा माता मायादेवी पुनः प्रकट होंगे तथा म्लेच्छों के साथ मिलकर कल्कि जी से युद्ध करेंगे | इसी युद्ध के वर्णन के अंतर्गत वर्णन है कि जब शुद्धोदन हार कर मायादेवी को बुलाने चला गया तो बौद्धों ने शुद्धोदन के पुत्र का आश्रय लेकर लाखों करोड़ों म्लेच्छों कि सहायता से युद्ध करना आरम्भ किया |

इस प्रकार से सभी प्रमाणों को एक साथ देखा जाय तो बुद्ध कई हैं, तथा सभी अवतार ही हैं जो उद्देश्य विशेष से यथासमय आते हैं | यदि प्रकाश में व्यक्ति हत्या कर रहा हो तो जान बचाने वाला अन्धकार कर देता है | वैसे ही जब धर्म का नाम लेकर म्लेच्छों में ब्राह्मण बन कर अधर्म प्रारम्भ किया तो उन्हें ठीक करने के लिए भगवान ने बुद्ध के रूप में आकर कहा कि जिस ईश्वर और धर्म के नाम पर तुम ये सब कर रहे हो, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है | बाद में जयदेव कवि आदि ने भी कारुण्यमातान्वते, निन्दसि यज्ञविधे, सदय पशुघातम् आदि शब्दों के द्वारा इसी बात को प्रमाणित किया कि श्रीहरि का ही अवतार भिन्न भिन्न समयों में बुद्ध को रूप में हुआ था |

वर्तमान में कथित नवबौद्ध आदि बुद्ध के मूल सिद्धांत को न जानने के कारण घोर अनर्थ करते हैं | क्योंकि बुद्ध ने फोड़े को काट कर हटाया और शेष को सुरक्षित किया | लेकिन कथित बौद्धगण स्वस्थ देह का गला ही काट दे रहे हैं | वस्तुतः यह सब कुछ पूर्व नियोजित था कि सनातन में घुसपैठ किये म्लेच्छों को नास्तिक बौद्ध दर्शन का आश्रय लेकर विष्णु भगवान भ्रमित करके उन्हें सनातन से वापस दूर करेंगे तथा इस प्रक्रिया में जो भी कुछ सनातनियों में भ्रम व्याप्त होगा उसे बाद में उचित अवसर पाकर कुमार कार्तिकेय तथा भगवान

शिव क्रमशः आचार्य कुमारिल भट्ट तथ आदिगुरू शंकराचार्य के रूप में आकर ठीक करेंगे | तो निष्कर्ष यह निकलता है कि बुद्ध निःसंदेह नारायण के अवतार हैं तथा उनका उद्देश्य तथा कर्तव्य सही था | बुद्ध सही थे, बौद्ध नहीं |

अजिन पुत्र बुद्ध (भागवत)
गौतम बुद्ध (भविष्य पुराण)
शुद्धोदन पुत्र बुद्ध (कल्कि पुराण)

तीनों का वर्णन मिलता है।

धर्मसम्राट् करपात्री स्वामी आदि ने इसिलिये गौतम बुद्ध को अवतरण नहीं माना क्योंकि अम्बेडकर के बौद्ध बन जाने से अंग्रेजों ने सवर्ण तथा दलित नाम का जो कथित विभाजन किया था, उसमे दलित जन सनातन विरोधी हो रहे थे। साथ ही वे यह भी मानते थे कि गौतम ही एक मात्र बुद्ध हैं। उससे पहले कोई बुद्ध नहीं हुआ। इसीलिए करपात्री जी ने गौतम को अवतरण नहीं मानने की दूरगामी नीति अपनायी ताकि लोग बाद में भ्रमित न हों। साथ ही उन्होंने अजिन पुत्र पर भी जोर दिया। यदि गौतम से विरोध होता तो आचार्य शंकर, आचार्य कुमारिल तथा आचार्य उदयन आदि, जो गौतम से कुछ ही समय बाद हुए थे, कभी न कभी कहीं न कहीं यह ज़रूर कहते कि अजिन पुत्र ही वास्तव में बुद्ध अवतार हैं। यह गौतम नाम का आदमी फ़र्ज़ी बुद्ध था। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ। क्योंकि वे इस बात को अच्छे से जानते थे।

आदिगुरु ने कभी गौतम के अवतार न होने की बात कही ? या ये कि वो फ़र्ज़ी बुद्ध है। एक मात्र अजन पुत्र ही बुद्ध हैं। और केवल वे ही अवतार हैं। कुमारिल भट्ट या आचार्य उदयन ने भी नहीं कहा। जबकि गौतम के सबसे निकट समकालीन बौद्ध खंडक तो वही लोग थे।

कारण मैं बता रहा हूँ। अम्बेडकर के बौद्ध बनने से सनातनियों का बड़ा वर्ग जो अंग्रेजों की कूटनीति का शिकार था, बुद्ध की ओर आकर्षित हुआ। यदि धर्मसम्राट जी जैसा अतिमान्य व्यक्तित्व यह कहता कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार हैं तो बाकी सुधरे हुए सनातनियों में यह भ्रम होता कि विष्णु के कृष्ण और बौद्ध अवतार के उपदेश में इतनी विसंगति क्यों है। मूल उद्देश्य जो अवतारों का था, उससे वे परिचित तो थे नहीं। अब बुद्ध का मत भौतिकवादी है। मायाप्रधान है। बहुत लुभावना है, बहुत आकर्षक है। अतः यदि उन्हें विष्णु का अवतार कह देते तो लोग और तेजी से बुद्ध की ओर भागते। ये कह कर कि बौद्ध बनने से हमें भौतिकवाद का लाभ मिलेगा और लोग हमें गलत भी नहीं कहेंगे क्योंकि बुद्ध तो विष्णु के अवतार थे। अतः उन्होंने सीधा कह दिया कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार ही नहीं है। यहाँ ध्यान दें कि नीति उन्होंने वही अपनायी जो विष्णु भगवान् ने बौद्धवतार में लगायी थी। ईश्वर के नाम पर अधर्म करने वालों को यह कह कर रोका कि ईश्वर ही नहीं है। इस प्रकर धर्मसम्राट करपात्री स्वामी जी ने सनातन का बहुत बड़ा वर्ग बचा लिया जो बौद्ध बनने जा रहे थे। अब जैसे हमारे हज़ारों जन्मों में हज़ारों माता पिता हुए, पर हमने उसी को प्रधानता दी, उसी से प्रभावित हुए जो सबसे अर्वाचीन है। वैसे ही सभी लोग अजन पुत्र की अपेक्षा गौतम से अधिक प्रभावित हुए। अब गौतम का विरोध करने से ऐसे लोग, जो यह सोच रहे थे कि बौद्ध मत का लाभ लेंगे लेकिन धर्मभीरु होने से बौद्ध मत को भी सनातन ही मान रहे थे, यह कह कर कि गौतम बुद्ध विष्णु के अवतार हैं, अतः हम सही हैं, ऐसे लोगों पर विराम लग गया।

लेकिन बौद्ध अवतार हुआ तो था, अतः उन्होंने अजन पुत्र को अवतार माना। इससे बुद्ध का विरोध हुआ भी, और नहीं भी हुआ। दोनों कार्य साध लिये। और वेदविरोधी होने से भगवान् का बुद्ध विग्रह श्रेष्ठ नहीं माना गया, अतः उनका विरोध भी पापकारक नहीं हुआ।

6. ऋषि तत्त्व एवं पितर*

जब सृष्टि की उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई तब उस ब्रह्म से सर्वप्रथम ऋषि तत्त्व प्रकट हुए, ऋषियों से पितर, पितरों से देवता, देवताओं से असुर और असुरों से गन्धर्वों का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्म से उत्पन्न ये सभी तत्त्व प्राणात्मक हैं, तथा प्राणों के विभिन्न स्वरूप हैं।

असद्वा इदमग्र आसीतं् तदाहुः किं तदसदासीदिति ऋषयो वा तेऽग्रऽसदासीत्। तदाहुः के ते ऋषय इति। प्राणा वा ऋषयः। (श.ब्रा.6.1.1)

असत् ही सर्वप्रथम था। यह असत् किसे कहा गया है? यह असत् ऋषि है जो सबसे पहले हुए ये ऋषि क्या है? यह ऋषि प्राण हैं। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में वर्णित इन ऋषियों से पितरों की उत्पत्ति को स्मृतियों में कहा है मनु कहते है-

ऋषिभ्यः पितरों जाताः पितृभ्यो देवामानवाः। देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वषः।। मनु 3.201

ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितरों से देव तथा मानव हुए। देवों से चराचर सम्पूर्ण जगत् अव्यक्त से व्यक्त होने के आनुपूर्वी क्रम से प्रकट हुआ। मनु एक स्थान पर पुनः कहते हैं-

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः। मनु 3.198

इस प्रकार पितरों को जो वर्णन प्राप्त होता है वह कई स्तरों पर भिन्न-भिन्न है देवपितर, मनुष्यपितर, ऋतु पितर प्रेत पितर आदि पुनः उनके भी भेदोपभेद कहे गए हैं।

ऋषि वह मौलिक तत्त्व है जो यजुर्वेद में यत् भाग है। अब प्रष्न उठता है कि वेद तो हम जानते नहीं तो हमें क्या पता कि यजु क्या है तो इसका समाधान है कि यजुर्वेद में दो शब्दों का प्रयोग है प्रथम *यत*् द्वितीय *जू* । यत् यानि प्राण अथवा ऋषि तथा जू यानि गति। तो इस यजुर्वेद में यत् यानि प्राणात्मक ऊर्जा ही ऋषि तत्त्व है। यह ऋषि सृष्टि में सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ। इसी ऋषि तत्त्व ने सारी प्रक्रियाएँ आगे बढाईं। ये प्राणात्मक तत्त्व ही सृष्टिकामना से प्रेरित होकर गतिशील बना। ये प्राण जो कि ऋषि है यही वेद यानि ज्ञान भी है। क्योंकि वेदों का कोई रचयिता नहीं है सर्वप्रथम ब्रह्मा जी ने इनका स्मरण किया। स्मरण उसी का किया जाता है जो कि पूर्व में हो। ब्रह्मा ही प्रथम ऋषि हुये उन्हीं से अन्य ऋषियों की उत्पत्ति हुई। विभिन्न प्राणात्मक ऊर्जा रूपी ऋशियों के परस्पर मिलन से सृष्टि में विभिन्न जीव जगत् की उत्पत्ति हुई। क्योंकि इन प्राणात्मक ऊर्जा रूप ऋशियों में ही लिंग निर्धारण की क्षमता थी। आगे मैथुनी सृष्टि का विकास हुआ।

यदि हम पुराणों को पढ़ते हैं तो उनमें कई प्रसंग आते हैं कि अमुक ऋषि ने जब अमुक अप्सरा को देखा तो उस ऋषि का तेज घड़े में या कुष पर अथवा कहीं अन्य स्थल पर गिर पड़ा, उससे अमुक ऋषि की उत्पत्ति हुई ये ही तो वह तथ्य है जिससे सिद्ध होता है कि ऋषियों के परस्पर मिश्रण से ही विश्व मे विभिन्न जीव-जगत् की उत्पत्ति हुई।

प्राणमूलक वैदिक विज्ञान में ऋषिप्राण ही सबका मूल तत्त्व है, सर्वाधार है। सामान्यत: जब गोत्र का नामोच्चार होता है, तब ऋषि विशेष का नाम लिया जाता है, यथा कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, आदि । ये सभी नाम विभिन्न प्रकार के प्राणों के नाम भी है, नक्षत्रों के नाम भी हैं, तथा गोत्र प्रवर्तक भी हैं।

यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या ये नक्षत्र मण्डल में, प्राणों के रूप में , गोत्रप्रवर्तक के रूप में भिन्न भिन्न हैं क्या?

समाधान है कि नहीं ये एक ही प्राणात्मक ऊर्जा है, जो सभी स्थलों पर विभिन्न रूपों में कार्यरत है। इसको एक उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है कि किसी भी जनपद का जनपदाधीश यानि कलेक्टर कई विभागों में विभागाध्यक्ष होता है, तथा वहाँ रहकर कार्य सम्पादित करता है। जिस विभाग में रहकर जिस कार्य का सम्पादन करता है उसी विभाग के विभागध्यक्ष के रूप में अपनी मुद्रा (सील)का प्रयोग करता है। उसी प्रकार मुख्य रूप से प्राणात्मक ऊर्जा है, जो विभिन्न कार्यो को सम्पादित करती है। ऐसे में प्रथम नाम प्राणात्मक ऊर्जा के हैं, यही नक्षत्र मण्डल में स्थित होकर पृथ्वी तथा सम्पूर्ण सौरमण्डल, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जहाँ-जहाँ तक इनकी रश्मियाँ पहुँचती हैं वहाँ -वहाँ तक ये अपने प्राणऊर्जा से पदार्थों व जीवों का प्रभावित करते हैं।

यही प्राण रश्मियाँ जब किसी पिण्ड जैसे पृथ्वी आदि पर पहुँचती हैं तो प्रकृति व जीव जगत् के निर्माण में अपना योगदान देती हैं इसीलिये विभिन्न प्राणात्मक ऊर्जाओं के मिश्रण से जीव—जगत् बनता है। उसी क्रम मे मानवोत्पत्ति भी होती है। मानवों के अलावा अन्य स्थलों पर सगोत्रीय उद्भवन में कोई समस्या नहीं होती, किन्तु मानव में सगोत्रीय उद्भवन से कई प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है, इसीलिये यहाँ गोत्रों व प्रत्येक गोत्र के प्रवर आदि को ध्यान में रखकर विवाहादि संस्कार किये जाते हैं। यही कारण है कि गोत्र को ध्यान में रखा जाता है,और अद्यावधि पर्यन्त गोत्र पर विचार किया जाता है।

ये तो सिद्ध हो गया कि ये ऋषि प्राण हैं। तो देवता क्या हैं? देवता भी प्राण हैं? ऋषि भी प्राण हैं। किन्तु इनमें भेद हैं कैसे भेद है? इसका समाधान वेदविज्ञान मनीषी पण्डित मधुसूदन ओझा जी ने किया है कि जिस प्रकार एक ही स्वर्ण धातु से बने हुये स्वर्णाभूषणों में भेद होता है उसी प्रकार एक सर्वप्रथम प्रकट ऋषिप्राण से पुन: सृष्टि क्रम के सन्दर्भ में कई प्राण विभक्तियाँ हुई, कुछ ऋषि प्राण ही रहे, कुछ देव प्राण हुये, कुछ असुर प्राण हुये, कुछ पितृप्राण हुये, कुछ गन्धर्व प्राण हुये, कुछ प्राणों से सम्पूर्ण दृश्यमान् जीव जगत् उत्पन्न हुआ।

ऋषि शब्द का एक अर्थ तत्त्वद्रष्टा के रूप् में भी ग्रहण किया गया है। ऋषि तत्त्व द्रष्टा हैं और तत्त्वज्ञान ही दूसरों को देते हैं। बृहद्देवता के रचनाकार ने मूलत: तीन प्रकार के ऋषियों का वर्णन किया है—सृष्टिप्रवर्तक ऋषि, वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि, और गोत्र प्रवर्तक ऋषि। सृष्टि के रचयिता ऋषिप्राण हैं जिनका प्रत्यक्ष लौकिक इन्द्रियों से नहीं किया जा सकता। अर्थात् हम अपनी आँखों से उस महाप्राणात्मक शक्ति

को न देख सकते हैं न ही अन्य किसी प्रकार अनुभव कर सकते हैं। मात्र इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देख कर अनुमान द्वारा जान सकते हैं कि कोई ऊर्जा है जिसपर ये सम्पूर्ण विश्व आधारित है। पुन: भृगु, अंगिरा, अत्रि ,वसिष्ठ, अगस्त्य, आदि नामों से वे ही प्राणात्मक ऊर्जा रूप ऋषियों ने प्रत्यक्ष देह धारण की तथा हमें वेद का ज्ञान दिया। वे हमारे वेदों के आचार्य , मन्त्र द्रष्टा, वेदों के प्रवर्तक हुये ।

ये ऋषि कई स्वरूपों को धारण करते हैं, ये अंगिरा के पुत्र हैं ये अग्नि से प्रकट हुये हैं। इत्यादि कई वचन हमें वैदिक वाङ्मय में दिखाई देता है। इसी आधार पर वेद कहता है प्राण अनन्त प्रकार के हैं। ये प्राण ही ऋषि हैं, अत: ऋषि भी अनन्त हैं। इस प्रकार प्राण व ऋषि के अनन्त खण्ड हो जाते हैं। ऋषि तप द्वारा दूसरे पदार्थों की रचना करते हैं। अत: इन्हें तपोजा नाम से भी जाना जाता है।

सृष्टि के निर्माण प्रक्रिया में काल की दृष्टि से कई लाखों वर्षों का समय लगता है। उस प्रक्रिया में ये प्राणात्मक ऊर्जा रूप ऋषि ही कार्यरत हैं, इसीलिये पुराणों में कहा जाता है कि अमुक ऋषि ने इतने लाख वर्षों तक तपस्या करके सन्तान प्राप्त की वह सन्तान क्या किया कि उसने पुन: तप किया और अपने इतने पुत्र व इतनी पुत्रियाँ उत्पन्न की । इन पुराणों में वेद के ही ज्ञान को सरल व कथानक रूप में बताया गया है। जो प्राणात्मक ऊर्जा क्रियाशील है, उसका स्पष्ट रूप वेद में है, थोड़ा सरल रूप स्मृतियों में है, तथा अत्यन्त सरल रूप पुराणों में प्राप्त होता है।

पुराणों ने प्राणात्मक ऋषियों के पृथ्वी पर मानव रूप में अवतरित होने के बाद उनके पूर्व की तपस्या को कथानक के रूप में लिखकर वैदिक ज्ञान से हमें अवगत कराया है। इसीलिये पुराणों को पढ़ने के लिये हमें एक ऋषि दृष्टि की आवश्यकता हैं न कि व्यभिचारी पाश्चात्यों की

ॐ शं ।

वसुधैव कुटुम्बकम् की बात किसने बताई ? सनातन ने ही तो बताई !! उसी सनातन में अथर्ववेद में नहीं पढ़ा आपने, जिसमें गोहत्यारों को गोली मारने का आदेश है ? वशिष्ठ स्मृति में शिव का वचन नहीं पढ़ा कि धर्म रक्षा के लिये और राष्ट्र का संवर्धन करने के लिए सभी वर्णों को शस्त्र उठाना चाहिए। रोमहर्षण संहिता में भगवान विष्णु का वचन नहीं पढ़ा जिसमें धर्मरक्षा के लिए शस्त्रप्रयोग का आदेश है ? तो क्या नाखून काटने के लिए हथियार उठायें ? याद रखें शरीर का जो अंग सड़ जाता है, उसे काटकर हटा ही देते हैं। आये हैं वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करने। छद्म मानवतावादी।
ये बात सोमनाथ वालों को समझ में नहीं आई थी। कश्मीर वालों को नहीं आ रही है।
कर्ण बहुत दानी था, लेकिन अधर्म का पक्ष उसे नाश के कगार पर ले गया। दानशीलता बचा न सकी। भीष्म का ज्ञान, द्रोण का पराक्रम, बचा न सके। तमाम अच्छाईयां हों लेकिन एक बुराई ही उसे ख़त्म करने के लिए पर्याप्त है। जैसे सहस्रों उत्तम व्यंजन केवल एक बूँद विष के कारण अग्राह्य हो जाते हैं। वहां उनकी अच्छाईयां नहीं देखी जातीं। स्वर्णपात्र में परोसी गयी विष्ठा भी अग्राह्य ही है। सहस्रों लीटर दूध खटाई की चन्द बूंदों से विकृत हो जाती हैं। वैसे ही सम्पूर्ण गुणों से युक्त व्यक्ति भी अल्प अधर्म से ही नष्ट हो जाता है। अच्छे लोगों में भी एक बुरी बात होती है, वे सब जगह अच्छाई ही देखते हैं। न मिलने की स्थिति में अच्छाई की कल्पना कर लेते हैं। मनुष्य को आर्जव अपनाना चाहिए। आर्जव अर्थात औचित्य पूर्ण व्यवहार।

समता अपनाये। इसका अर्थ ये नहीं कि सबके साथ समान व्यवहार हो। अपितु अर्थ ये हैं कि औचित्यपूर्ण व्यवहार हो। समता घातक है। माता, पत्नी, पुत्री, भगिनी में आर्जव देखे। अर्थात समता न देखे, औचित्य पूर्ण भाव से देखे। इसी प्रकार धर्माधर्म पक्ष में भी औचित्य पूर्ण व्यवहार रखे ऐसा शिव का मत है। क्योंकि जो व्यक्ति धर्म के अनुसार चलने का प्रयत्न करता है लेकिन उसकी रक्षा का प्रयत्न नहीं करता वह धर्म का विनाश अवश्य कर बैठता है ऐसा स्कन्दपुराण का मत है।
: जो लोग (विशेषतः सौम्यवादी हिंदू) इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी हैं कि उन्हें म्लेछों के आतंक में ईश्वर की प्रेरणा और इच्छा दिख जाती है,

मैं पूछता हूँ कि जब अन्य हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए उनका प्रतिरोध करते हैं तो उसमें इन ब्रह्मज्ञानियों को ईश्वर की इच्छा क्यों नहीं दिखती ?

हमारे ग्रन्थ कहते हैं कि ग्वाला के घर का दूध कभी अपवित्र नहीं होता। जब वो बिक जाए तब ही शुद्धि अशुद्धि का विचार होता है। माली के घर का फूल बासी नहीं होता जब तक या तो बिक न जाये या फिर बिलकुल ही गंधहीन और कुम्हला न जाय।

ब्राह्मण जब तक सर से स्नान न करे, वह शुद्ध नहीं है। लेकिन शूद्र हाथ पैर धो लेने मात्र से शुद्ध है। ब्राह्मण यदि गायत्री सन्ध्या नहीं करता तो वह पतित है। जबकि शूद्र के साथ ऐसा नहीं है।

यज्ञ की सम्पूर्णता चारों वर्णों के बिना नहीं होती। सामान्यता इन लोगों के बिना यज्ञ सम्पूर्ण नहीं होता।
ब्राह्मण - पुरोहित आचार्य
क्षत्रिय - याजक और संरक्षक
वैश्य व्यापारी - पूजन सामग्री एवं भोजन व्यवस्था
ग्वाला - गो सम्बन्धी उत्पाद
माली - पुष्प, दूर्वा, विल्वपत्र
चमार - ढोल, तुरही आदि मांगलिक वाद्ययंत्र
नाई - क्षेत्रपाल पूजन आदि, मण्डप पूजन में बाह्य सहयोग
बढ़ई - मण्डप निर्माण एवं अरणी निर्माण
सामान्य श्रमजीवी - कुण्ड निर्माण, वेदी निर्माण
कुम्हार - हवन पात्र, कलश, दीपक आदि
अन्त्यज वनवासी - फल, दोना, पत्तल, आसन आदि
तेली - क्षेत्रपाल एवं नवग्रह पूजन में तैलाभ्यंग विधान

इन जितनी भी जातियों का वर्णन किया गया, इनमें तेली , चमार से लेकर ब्राह्मण तक सभी लोग शिक्षित हों, सभी लोग आचारवान् हों, नशे से दूर रहने वाले हों, चिंतामुक्त हों, जितेन्द्रिय हों, प्रसन्न चित्त हों, शाकाहारी एवं सभ्य हों तब ही यज्ञ में हाथ बटाने के अधिकारी हैं।

और भी कई हैं... लेकिन एक बात बताओ हमें कि ब्राह्मणों ने शोषण कब किया ? दलित जैसा कुछ नहीं होता। होते केवल शूद्र हैं जो पूर्ण और अनिवार्य रूप से सनातन समाज का अभिन्न और वांछित वर्ण हैं।

भगवान की लीला पर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि भगवान का लीला धाम, लीला पात्र, लीला शरीर, और उनकी लीला प्राकृत भौतिक नहीं होती है। उनमें देह देही भेद नहीं होता।

न भूतसंघ संस्थानो देवस्य परमात्मनः।
यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः॥
स सर्वस्माद् बहिष्कारो श्रौतस्मार्त विधानतः।

मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलः स्नानमाचरेत्॥
(महाभारत)

परमात्मा का शरीर भूतसमुदाय से बना हुआ नहीं होता है। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्मा के लीला शरीर को भौतिक जानता मानता है, उसका समस्त वैदिक श्रौत तथा स्मार्त कर्मों से बहिष्कार कर देना चाहिए अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्म में अधिकार नहीं है। यहाँ तक कि उसका मुंह देखने से भी वस्त्रसहित स्नान करना चाहिए।

कथित वेदवादी आर्य समाजी जन श्रीकृष्ण को महापुरुष मात्र मानते हैं और क्षुद्र बुद्धिता के कारण श्रीमद्भागवत आदि को अप्रामाणिक मानते हैं। लेकिन महाभारत को सही मानते हैं, अतः वहीं का प्रमाण दिया।

अग्रे अपि ग्रंथान्तरेषु...

अनेक कुतार्किकों के मन में यह कल्पना उठती है कि भगवन्नाम की महिमा वास्तविक न होकर अर्थवाद मात्र है। उनके मन में यह धारणा तो हो जाती है कि शराब की एक बूंद भी पतित बनाने के लिए पर्याप्त है लेकिन यह विश्वास नहीं होता कि भगवन्नाम का सकृदपि उच्चारण या चिंतन मात्र भी परम कल्याणकारी है।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमा:।
तैरर्जितानी पुण्यानि तद्वदेव भवन्ति हि॥

जो नराधम पुराणों में अश्रद्धा रखते हुए अर्थवाद की कल्पना करते हैं, उनके द्वारा उपार्जित पुण्य भी वैसे ही अर्थवादवत् निष्फल हो जाते हैं।

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरी
तुल्यं निजान्तर्गतम्,
पश्यन्नात्मनि मायया
बहिरिवोद्भूतं यदा निद्रया।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये
स्वात्मानमेवाद्वयम्,
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥१॥

यह विश्व दर्पण में दिखाई देने वाली नगरी के समान है (अर्थात् अवास्तविक है), स्वयं के भीतर है, मायावश आत्मा ही बाहर प्रकट हुआ सा दिखता है जैसे नींद में अपने अन्दर देखा गया स्वप्न बाहर उत्पन्न हुआ सा दिखाई देता है। जो आत्म-साक्षात्कार के समय यह ज्ञान देते हैं कि आत्मा एक (बिना दूसरे के) है उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥१॥

बीजस्यान्तरिवान्कुरो जगदिदं
प्राङनिर्विकल्पं पुन-
र्मायाकल्पितदेशकालकलना
वैचित्र्यचित्रीकृतम्।
मायावीव विजृम्भयत्यपि
महायोगोव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥२॥

बीज के अन्दर स्थित अंकुर की तरह पूर्व में निर्विकल्प इस जगत, जो बाद में पुनः माया से भांति - भांति के स्थान, समय , विकारों से चित्रित किया हुआ है, को जो किसी मायावी जैसे, महायोग से, स्वेच्छा से उद्घाटित करते हैं , उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥२॥

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकम
सत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्वमसीति वेदवचसा
यो बोधयत्याश्रितान्।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न
पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥३॥

जिनकी प्रेरणा से सत्य आत्म तत्त्व और उसके असत्य कल्पित अर्थ का ज्ञान हो जाता है, जो अपने आश्रितों को वेदों में कहे हुए 'तत्त्वमसि' का प्रत्यक्ष ज्ञान कराते हैं, जिनके साक्षात्कार के बिना इस भव-सागर से पार पाना संभव नहीं होता है, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥३॥

नानाच्छिद्रघटोदरस्तिथ-
महादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादि
करणद्वारा बहिः स्पन्दते।

जानामीति तमेव भांतमनु-
भात्येतत्समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥४॥

अनेक छिद्रों वाले घड़े में रक्खे हुए बड़े दीपक के प्रकाश के समान जो ज्ञान आँख आदि इन्द्रियों द्वारा बाहर स्पंदित होता है, जिनकी कृपा से मैं यह जानता हूँ कि उस प्रकाश से ही यह सारा संसार प्रकाशित होता है, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥४॥

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि
चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालांधजड़ोपमास्त्वह-
मिति भ्रान्ता भृशं वादिनः।
मायाशक्तिविलासकल्पित
महाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥५॥

स्त्रियों, बच्चों, अंधों और मूढ के समान, देह, प्राण, इन्द्रियों, चलायमान बुद्धि और शून्य को 'मैं यह ही हूँ' बोलने वाले मोहित हैं। जो माया की शक्ति के खेल से निर्मित इस महान व्याकुलता का अंत करने वाले हैं, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥५॥

राहुग्रस्तदिवाकरेंदुसदृशो
मायासमाच्छादनात्
संमात्रः करणोपसंहरणतो
योऽभूत्सुषुप्तः पुमान्।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये
यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥६॥

राहु से ग्रसित सूर्य और चन्द्र के समान, माया से सब प्रकार से ढँका होने के कारण, करणों के हट जाने पर अजन्मा सोया हुआ पुरुष प्रकट हो जाता है। ज्ञान देते समय जो यह पहचान करा देते हैं कि पूर्व में सोये हुए यह तुम ही थे, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥६॥

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु

तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानम-
हमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति
भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥७॥

बचपन आदि शारीरिक अवस्थाओं, जागृत आदि मानसिक अवस्थाओं और अन्य सभी अवस्थाओं में विद्यमान और उनसे वियुक्त (अलग), सदा मैं यह हूँ की स्फुरणा करने वाले अपने आत्मा को स्मरण करने पर जो प्रसन्नता एवं सुन्दरता से प्रकट कर देते हैं, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥७॥

विश्वं पश्यति कार्यकारण-
तया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव
पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
स्वप्ने जाग्रति वा य
एष पुरुषो मायापरिभ्रामितः
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥८॥

स्वयं के विभिन्न रूपों में जो विश्व को कार्य और कारण सम्बन्ध से, अपने और स्वामी के सम्बन्ध से, गुरु और शिष्य सम्बन्ध से और पिता एवं पुत्र आदि के सम्बन्ध से देखता है, स्वप्न और जागृति में जो यह पुरुष जिनकी माया द्वारा घुमाया जाता सा लगता है, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥८॥

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बर-
महर्नाथो हिमांशुः पुमान्
इत्याभाति चराचरात्मकमिदं
यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
नान्यत्किञ्चन विद्यते
विमृशतां यस्मात्परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम
इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥९॥

जो भी इस स्थिर और गतिशील जगत में दिखाई देता है, वह जिसके भूमि, जल, अग्नि, वायु , आकाश, सूर्य, चन्द्र और पुरुष आदि आठ रूपों में से है, विचार करने पर जिससे परे कुछ और विद्यमान नहीं है, सर्वव्यापक, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥९॥

सर्वात्मत्वमिति स्फुटिकृतमिदं
यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात्तदर्थमन-
नाद्धयानाच्च संकीर्तनात्।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिद्ध्येत्तत्पुनरष्टधा परिणतम्
चैश्वर्यमव्याहतम्॥१०॥

सबके आत्मा आप ही हैं, जिनकी स्तुति से यह ज्ञान हो जाता है, जिनके बारे में सुनने से, उनके अर्थ पर विचार करने से, ध्यान और भजन करने से सबके आत्मारूप आप समस्त विभूतियों सहित ईश्वर स्वयं प्रकट हो जाते हैं और अपने अप्रतिहत (जिसको रोका न जा सके) ऐश्वर्य से जो पुनः आठ रूपों में प्रकट हो जाते हैं, उन श्रीगुरु रूपी, श्री दक्षिणामूर्ति को नमस्कार है ॥१०॥

पितृ दिवस (फादर्स डे) विशेषांक

धर्म ज्ञान के अभाव में, और स्वयं को बुद्धिमान् बताने की होड़ में सनातन सिद्धांतों की अवहेलना करने वाले प्रेततुल्य नराधम लड़के लड़कियां भी आज कथित पितृ दिवस (फादर्स डे) मना रहे हैं।

पूर्वकाल में सनातनी भारत में माता पिता के सम्मान या सेवार्थ कोई तिथिविशेष निर्धारित नहीं था। आज भी बहुतायत से नहीं है। केवल दिवंगत पितरों के श्राद्ध निमित्त पितृपक्षादि में एक तिथिविशेष का निर्धारण किया गया था।

प्रात काल उठि कै रघुनाथा।
मात पिता गुरु नावहिं माथा॥
(श्री रामचरितमानस)

(मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी प्रातः उठकर नित्य ही माता पिता और गुरुचरणों की वंदना करते थे।)

मानहिं मात पिता नहीं देवा।
साधुन्ह सन् करवावहिं सेवा॥

(श्री रामचरितमानस)

(आसुरी स्वभाव वाले निशाचर गण माता पिता को देवता तुल्य नहीं मानते थे और संतों से सेवा कराते थे।)

आज भी ऐसे राक्षस बहुतायत से दिख जाते हैं। जेहादी शाहरूख खान और बाल वेश्या आलिया भट्ट की फ़िल्म डिअर जिंदगी में ऐसी ही कुप्रेरणा से पूर्ण अमर्यादित दृश्य दिखाए गए हैं।

हमारे सनातन धर्म में मातापिता के महत्व के विषय में जितनी स्पष्ट बातें कही गयी हैं, उनका दर्शन अन्य मतान्तरों में नहीं होता।

विश्वप्रसिद्ध ऋषिगण जाबालि, कृतबोध एवं कौशिक आदि को तुलाधार वैश्य एवं धर्मव्याध आदि ने तत्वज्ञान का उपदेश दिया तो उन्होंने इसका स्रोत जानने की इच्छा की। इस बार पर वैश्य एवं व्याध ने ज्ञान के पीछे मातापिता की निःस्वार्थ सेवा को ही कारण बताया।

प्रतिज्ञाय सदा पूजां पित्रोरेतां चराम्यहम्।
नाहं जाने तपोदान व्रत यज्ञादिकं च यत्॥
पित्रोश्चरणयोः सेवामेवैकां जान एव हि।
यन्मे ज्ञानं समुत्पन्नं पित्रो: सेवाफलं च तत्॥
(महाभारत, बृहद्धर्म पुराण)

(मैं प्रण लेकर माता पिता की सेवा कर रहा हूँ। मैं तप, दान, व्रत, यज्ञ आदि कुछ नहीं जानता। केवल माता पिता की चरणसेवा से ही मुझे ज्ञानोत्पत्ति हो सकी है। यह सब पितृसेवा का फल है)

माता पिता के महत्व के विषय में ग्रंथेतरों में वर्णन है कि...

पिता धर्म: पिता स्वर्ग: पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवताः॥
पिता यस्य क्वचिद्रुष्टो न तस्य कस्यचिद्गतिः।
जपो दानं तपो होमः स्नानं तीर्थक्रियाविधिः॥
वृथैव तस्य सर्वाणि कर्माण्यन्यानि कानिचित्।
करोति सर्वदेवेशं पितरं चानुतप्य यः॥
(बृहद्धर्म पुराण)

(पिता की सेवा ही परम धर्म, स्वर्ग दायक एवं पापापहारिणी तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने से सभी देवता स्वतः प्रसन्न हो जाते हैं। जिसके पिता अपने पुत्र पर क्रोधित हैं, उसकी गति कहीं नहीं है। जप, दान, होम, स्नान, तीर्थसेवा आदि भी उसके लिए निष्फल है। सभी देवताओं में श्रेष्ठ पिता की सेवा

के बिना ही जो कार्य करता है, वह धर्म भी पिता के क्रोध से दग्ध होकर विषतुल्य हो जाता है।)

××××

पितुरप्यधिका माता गर्भधारण पोषणात्।
अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरुः॥
देशो गंगान्तिकः श्रेष्ठो दलेषु तुलसी दलम्।
वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठो गुरुर्माता गुरुष्वपि॥
मातरं पितरं चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम्॥
(बृहद्धर्म पुराण)

पतिता गुरुवस्त्याज्या माता तु न कथञ्चन।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥
(वाल्मीकीय आर्ष रामायण)

(गर्भधारण एवं पोषण माता करती है, अतः वे पिता की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। गंगा के समीपवर्ती क्षेत्र बाकियों के अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। पत्रादि में तुलसी, वर्णों में ब्राह्मण एवं गुरुजनों में माता श्रेष्ठा है। अतः जब माता पिता को एकसाथ देखे तो पहले माता को प्रणाम करने के अनन्तर पिता का अभिनन्दन करना चाहिए।

मनमौजी करने वाले पतित गुरु का त्याग कर देना चाहिए लेकिन पतिता होने पर भी माता का कभी भी त्याग न करे क्योंकि गर्भधारण एवं पालन पोषण करने से माता का स्थान अतिशय महत्वपूर्ण है।)

××××

हमारे यहाँ प्रतिदिन मातृ पितृ दिवस है। लेकिन आधुनिक डिग्रीधारी मूर्ख जन इस सर्वोच्च भाव युक्त संस्कृति की अवहेलना करने में लगे हैं। माता पिता भी केवल वासनापूर्ति के लिए ही समागम करते हैं। पूर्ण विधि और संकल्प पूर्वक योग्य सन्तान उत्पादन की तरफ ध्यान नहीं देते। अधिकांश भ्रष्ट सन्तानें अवांछित और असंस्कारित होती हैं।

आज के अधिकतर माता पिता अपनी संतान को लोभ, स्वार्थ और असंयम के भाव सिखाते हैं। अपनी संतानों को पास बुलाकर सभी मर्यादाओं का बहिष्कार करके मात्र पेट पालने की शिक्षा देते हैं।

मात पिता निज बाल बोलावहिं।
उदर भरै सोई धरम सिखावहिं॥
(श्री रामचरितमानस)

"सो सुत करहु उपाय, रुपया आवत जाहि विधि।
लाज रहे चाहे जाय, उसकी कछु परवाह नहीं॥"
(जनश्रुति)

हे पुत्र !! तुम वही उपाय करो जिससे घर में धन ही धन आता रहे। चाहे फिर इसके लिए हमें लज्जा संकोच का त्याग ही क्यों न करना पड़े, उसकी कोई चिंता नहीं है।

लेकिन उन्हें भी यह ध्यान देना चाहिए कि केवल शारीरिक सुखादि के फलस्वरूप रज वीर्य के संयोग से उत्पन्न देहयुक्त जीव की पुत्र संज्ञा नहीं है।

पुन्नाम नरकाद्यो वै स्वपितृन् परिरक्षति।
स वै पुत्ररिति ज्ञेयो इतरे नामधेयकाः॥
पुत्ररूपधरो जीवो ह्यदि धर्ममनाचरेत्।
तेन दुःखं महददुःखं प्राप्यते यन्न वाञ्छितम्॥
(श्रीराघवेंद्रचरितम्)

(पुम् नाम के नरक से जो अपने पितरों का उद्धार करता है, उसी को पुत्र जानना चाहिए क्योंकि पुत्र नाम धारण करके तो बहुत से लोग घूम रहे हैं। पुत्र रूपधारी जीव यदि धर्म का आचरण नहीं करता है तो उससे घोर दुःख प्राप्त होता है जिसकी इच्छा किसी ने नहीं की होगी।)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि यदि माता पिता स्वयं धर्म के विरोधी हों और पुत्र को भी धर्म के विपरीत आदेश या संस्कार दें, तो ऐसे आदेशों की विनम्रता से अवहेलना भी धर्म ही है। जैसे भरत जी ने अपनी माता कैकेयी एवं प्रह्लाद जी ने अपने पिता हिरण्यकशिपु के द्वारा दिए जाने वाले अधर्मपूर्ण आदेशों को नहीं माना।

यदि पुत्र ने धर्म के आचरण के द्वारा मोक्ष को प्राप्त नहीं किया और उसका अन्यत्र पुनर्जन्म हो गया तो उसके माता पिता को भी दोष लगता है क्योंकि उनके दिए गए संस्कार पर्याप्त न थे। वैसे ही यदि माता पिता नरक में पड़े हों तो पुत्र को भी दोष लगता है क्योंकि पुत्र ने उनके दिए शरीर से धर्माचरण नहीं किया। अतः मातापिता एवं पुत्र आदि का यह कर्तव्य है कि अपने अपने कर्तव्य एवं अधिकारों का पालन करते हुए एक दूसरे की धर्मसिद्धि में सहायक बनें।

इस लिये काटा परशुरामजीने अपनी माताका सिर ....

यह कथा आप सभीने सुनी होगी , भृगुवंशी महर्षि जमदग्निकी पत्नी थीं रेणुका । उनके ५ पुत्र थे , सबसे छोटे पुत्र थे श्रीहरिके अवतार

भगवान् परशुरामजी । रेणुकाने सरोवर पर चित्ररथ गन्धर्व को अप्सराओंके साथ विहार करते देखकर विचारा कि वह भी जमदग्निके साथ विहार करे । इस अपवित्र सङ्कल्प के आते ही उसका तेज नष्ट हो गया । जब वह लौटकर आयी ,तब जमदग्निने उसको हततेज देखकर ध्यानसे विचारा तो सब रहस्य जान लिया । अपवित्र रेणुकाको अपने पास रखना अनुचित जानकार उन्होंने अपने बड़े पुत्रसे कहा तुम रेणुकाका संहार करो । वह यह नहीं कर सका । शेष तीन पुत्र भी यह नहीं कर सके । तब सबसे छोटे पांचवे पुत्र परशुरामने पिताकी आज्ञा पाते ही रेणुकाका संहार कर डाला और जमदग्निसे वरदान माँगा कि रेणुकाका फिर जीवित होकर पहले की तरह ही हो जाय और उसे बीचकी घटनाकी कुछ भी खबर न रहे । जमदग्निके 'तथास्तु' कहनेसे रेणुका फिर पूर्वके समान ही पवित्र और वर्चस् से युक्त हो गयी ।

अब आपको इस कथाका अर्थ समझना होगा । जमदग्नि कौन हैं ? उनकी पत्नी रेणुका कौन हैं ? उनके ४ पुत्रों सहित पांचवे पुत्र परशुराम कौन हैं ? इस पर विचार करते हैं .....

सबसे पहले परशुरामजी कौन हैं ? यह बताता हूँ -
परशुरामजी को 'भृगुपति ' भी कहते हैं , क्योंकि वे भृगुकुलमें सर्वश्रेष्ठ हैं जैसे रघुकुलमें सर्वश्रेष्ठ श्रीराम 'रघुपति' कहलाते हैं ,इसीतरह परशुरामजी भृगुपतिके रूप में प्रसिद्ध हैं "आयहु भृगुकुल कमल पतंगा !(रा०मा०१/२६७/१) ," देखत भृगुपति बेषु कराला "(रा०मा०१/२६८/१) आदि गोस्वामी तुलसीदासजी के वचनोंसे यह चरितार्थ ही है ।

अब भृगुपति का वर्णन वेदोंमें इस प्रकार हुआ -
जल तत्त्व या रेतको षट्चक्रोंकी अग्निमें खूब भूनकर भस्म कर देनेके कारण भृगुपति का अर्थ गोपथ-ब्राह्मणमें है - "ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्यः(अद्भयः) यद्भेत आसीत्तदभृज्यत तस्माद् भृगुः समभवत् ,तद् भृगोर्भृगुत्वम् । - (गोपथब्राह्मण १/३)

अर्थात् - तपाये हुए जलोंसे जो रेत उत्पन्न हुआ ; वह भूँजा गया , इसीलिए वह 'भृगु' कहलाया । भूँजनेके कारण ही भृगुका भृगुत्व है । जलोंको भस्म करनेके लिये इस शरीरको यदि भाड़ मान लें यो योगी उसका भड़भूँजा है । वह जलोंकी भस्म बनाकर उसको अपने शरीर पर लगाता है , यही उसके ब्रह्मचर्य का तेज है । ब्रह्मचारीके शरीर पर जो स्वाभाविक तेज या कान्ति रहती है , वह वीर्यकी भस्म ही है । अर्थात् उसके शरीरमें तपके द्वारा रेतका परिपाक होता है और वह भस्मरूपमें परिणत हो जाता है । मेघ भी जलकी भस्म है -- "अभ्रं वा अपां भस्म (शतपथ ०७/५/२/४) अग्निका संयोगसे तप्त होकर जल आकाशगामी होता है । इसीलिए तपके द्वारा मनुष्य ऊर्ध्वरेता बनता है । बाहर ब्रह्माण्डमें सूर्यके तापसे जैसे मेघ बनते हैं , वैसे ही शरीरके भीतर तपकी अग्निके द्वारा रसोंके परिपाकसे रेतकी भस्म बनती है । वही शरीरीकी त्वचाके ऊपर तेज और कान्तिके रूपमें प्रकट होती है । ब्रह्मचारीके लिये इसप्रकार की भस्म परम विभूति है । यह भस्म ही उसके मण्डनके लिये श्रेष्ठ अंगराग है । इस भस्म से भासित होनेके कारण ही बटुरूपधारी शिवको कालिदासने 'ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा ' लिखा है ।

अब रेणुकाका मलिन होना और परशुरामजी के द्वारा उसकी मलिनता का नाशकर पुनः शुद्धरूपमें स्थापित करनेकी कथाका अर्थ समझाता हूँ -

वीर्य या रेतका नाम ही रेणु या रेणुका है । रेणु (रेतस-वीर्य) को भस्म करने वाली शारीरिक अग्नि ही उसका पति जमदग्नि (Metabolic fire) है ।
पाँच चक्र ही उसके पांच पुत्र हैं । सबसे प्रथम अर्थात् मूलाधार-चक्र उसका ज्येष्ठ पुत्र और विशुद्धिचक्र कनिष्ठपुत्र परशुराम है । शेष तीन चक्र तीन पुत्र हैं । यह रेणु (रेतस -वीर्य) चित्ररथ गन्धर्व (चित्र अर्थात् दृष्टिका विषय)को देखने मात्र से मलीन हो जाता है , मनके अपवित्र विचारोंसे ही अपवित्र हो जाती है । विकारयुक्त विचारही मनुष्यकी पवित्रता को नष्ट कर देनेके लिये काफी हैं । मानसिक विचारोंकी विकृतिसे ब्राह्म तेजकी तुरन्त हानि होती हो जाती है । पूर्ण ब्रह्मचर्यकी परिभाषामें शारीरिक क्रिया नीचेकी चीज है , मानसिक सङ्कल्पोंकी पवित्रता सबसे महत्वकी वस्तु है । कामके विचार पहले मनमें प्रकट होते हैं । कामको मनसिज , मनोभव , मनोज या सङ्कल्पयोनि कहा गया है । उसका उदय हमारे भीतरी विचारोंमें ही देखा जाता है । पूर्ण ब्रह्मचर्यके लिये शुद्ध विचार परम आवश्यक सञ्जीवनी हैं ।
एक बार जब रेणु अपवित्र हो जाती है तब उसका पवित्र करना कितना कठिन है , यह ऊपर की कथा से ज्ञात होता है । प्रथम चक्रकी या दूसरे , तीसरे और चौथे चक्रकी यह सामर्थ्य नहीं है कि वे अशुद्ध रेतको पुनः पूर्ववत् शुद्ध कर सकें । इसीलिए रेणुकाके पहले चार पुत्र यदि वे चाहते , तो भी जमदग्निकी इच्छानुसार अपनी माताको नवीन जीवन नहीं दे सकते थे । यह सामर्थ्य परशुराममें ही थी अर्थात् पाँचवे चक्रकी शक्तिपर अधिकार प्राप्त योगी अपवित्र और अशुद्ध रेणुको पुनः पवित्र बना सकता है । प्रत्येक चक्रको यदि हम भर्जन-क्रियाकी एक एक मंजिल मानें तो पाँचवे पड़ावको पार करने पर ही रेणुको पूर्णतया भूँजने में सफलता प्राप्त होती है ।

तात्पर्य है जमदग्नि (शारीरिक अग्नि वीर्य भूनने वाली) की पत्नी रेणुका (रेतस -वीर्य) जब चित्ररथ (नेत्रोंका विषय -नेत्रोंके द्वारा) गन्धर्व को देखती है तब , रेणुका का मन अपवित्र हो जाता है (दृष्टमात्र से ही) , उसे फिर उसी पवित्र अवस्था लाना परशुरामके अतिरिक्त किसीके वश में नहीं ।

जो ये कहते हैं सोच बदलिये दृष्टिकोण बदलिये , यह सब विचारोंका अन्तर है , मैं उन लोगोंको बता दूँ सोच बदलकर शारीरिक और मानसिक स्तरसे आप महान् बनने का प्रयास कर सकते हैं , क्योंकि इसका शारीरिक क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं होगा किन्तु यौगिक क्रियामें बहुत हानि होती है जिसे आप जान भी नहीं पाते हैं । क्योंकि आपका मन सही है आपका दृष्टिकोण सही है किन्तु चित्र (नेत्रोंके विषय) को देखके आपके मन पर बेशक प्रभाव न पड़े किन्तु आपका रेणु मलीन हो जाता है , जिससे आपका वीर्य उर्ध्वमुखी न होकर अधोमुखी ही रहता है और आप ऊर्ध्वरेता नहीं बन सकते , आप योग से भ्रष्ट हो जाते , किन्तु आपको आधुनिक सोच और महानता के चलते इसका ज्ञान ही नहीं , आपके लिये तो केवल बाह्य इन्द्रियाँ ही महत्वपूर्ण हैं । आपने शरीर को ही स्वयं समझ लिया है । आप इससे ऊपर उठ भी कैसे सकते है ?

भगवान् परशुराम आखिर ऐसे ही उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी नहीं बन गये।

प्रश्नकर्ता :- विद्वान और विद्यावान् में क्या अन्तर है ?

🌞 श्रीभागवतानंद गुरु 🌞: विद्यावान् के पास मूलभूत भौतिक जानकारी होती है। विद्वान् उसका विशेषज्ञ एवं मन्थक होता है।

प्रश्नकर्ता :- व्यास पीठ ही क्यों बोला जाता है ।

🌞 श्रीभागवतानंद गुरु 🌞: व्यास का अर्थ है, विस्तार और उचित विभाजनीय वर्गीकरण। जिस स्थान से शास्त्रों के गूढ़ भाव, तत्वोपासक ज्ञानार्थ का विभाजन, विस्तार हो वह व्यास पीठ है।

प्रश्नकर्ता :- भगवन् ! संगीतमय श्रीमद्भागवत कथा लिखना उचित नहीं है न ?

🌞 श्रीभागवतानंद गुरु 🌞: इसमें कोई दोष नहीं। कह सकते हैं।

पद्मपुराण में वर्णित श्रीमद्भागवत कथा के माहात्म्य में प्रह्लादस्ताल धारी तरल गतितया... प्रभृति श्लोकों में हरिकीर्तन का वर्णन है। नवधा भक्ति उपाख्यान में भी गानयोग का आश्रय लेकर कथा की बात आती है, जिसके आचार्य देवर्षि नारद एवं कृष्णानुरागिणी सत्यभामा आदि देवियां हैं।

परंतु यह ध्यान रहे कि कथा में संगीत का समावेश व्यंजनलवणवत् हो। अर्थात् अधिक तो न हो, लेकिन बिल्कुल भी रहित न हो। अधिक होने से गूढार्थ का लोप होगा और न होने से रस का लोप। अतः कथावाचक को चाहिए कि प्रसंगानुसार और करुण, श्रृंगार, गाम्भीर्य, विरह आदि रसानुसार शास्त्रोक्त छंदबद्ध गानयोग सम्मत संगीत का आश्रय लेते हुए कथा का उपक्रम करे।

सम्प्रति सर्वत्र ही धनलोभ से अधिकारी एवं अनधिकारी का विचार किये बिना ही केवल सात्विक मनोरंजन प्रधान कथा होने से सारभूत भगवत्प्राप्ति का लोप हो रहा है। अतः संगीत, ज्ञान एवं विरक्ति के मध्य सन्तुलन आवश्यक है।
व्याकरण की दृष्टि से संगीतमय के स्थान पर संगीतमयी लिख सकते हैं।

अथ कामेश्वर्यष्टकम्

यत्पादपद्मान्तरसन्निविष्टो, इंद्रादयो राज्यमलब्धवान्वै।
सुपर्णगो वाक्पतिरीश्वरश्च, कामेश्वरीं तां हृदि चिंतयामि
॥१ ॥

पूर्वोत्तरे नीलवनान्तरस्था, गुह्यांतरे कूपगता सुनित्या।
या विश्वयोनिः कृतिहेतुभूता, कामेश्वरीं तां शरणम् प्रपद्ये॥२॥
श्रीब्रह्मपुत्रेण परिवृता या, पंचामराराधित प्रेतसंस्था।
मोक्षप्रदात्रीम् भुविराज्यदात्रीम्, कामेश्वरीं तां प्रणमामि नित्यम्॥३॥
कामान्विता कामपरायणा च कामारिहृत्पद्मगता सुगेहा।
कामानभीष्टान्ननु पुण्यदा सा जयेच्च माता भुवनैकधात्री॥४॥
प्राग्ज्योतिषाधीश्वरदानवं या व्याजेन नारायणसन्निविष्टा।
जहार युद्धे खलु काममुग्धम्, कामेश्वरीं तां सततं नतोऽस्मि॥५॥
महासतीदेहविभाजनेन धृत्वा च देहानि महोज्ज्वलानि।
नीलांचले शङ्कररूपिणेऽस्मिन् इच्छानुसारेण विराजते सा॥६॥
सिद्धान्तवादेषु सदा रमन्तं पंथानुपंथेषु परिभ्रमन्तम्।
देहाभिमानेन समाप्लुतम् तं कामेश्वरी मोक्षप्रदायते सा॥७॥
प्राप्तुम् भवानीमतिदिव्यरूपां तपश्चरन्तम् खलु कूपकुंडे।
शिवाय या प्रददेऽभीष्टमेतत् कामेश्वरीं तामह मानतोऽस्मि॥८॥
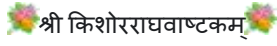
🌺श्री किशोरराघवाष्टकम्🌺

सुचारुकंबुकंठ रक्तलोचनायतं विभुम्,
सहानुजेन कौशिकेन राक्षसान्तकारणम्।
किरीटिनञ्च शंखिनं तथा प्रकाण्डधारिणम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

दरिद्रतापहारकम् सुचारुपुण्यदायकम्
निजात्मबोधकारकम् प्रसन्नचारुविग्रहम्।
पिनाककीर्तिभक्षकम् समस्तलोकरक्षकम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

भजे समस्तभक्तरोगदुःखक्लेशनाशकम्
अनन्तवीर्यरेणुकात्मजस्य गर्वमोचकम्।
समस्तशत्रुपक्षदुर्जनैक भीतिकारकम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

त्रिलोकशक्तिपोषकम् सदा कपीन्द्रवन्दितम्
तथा विदेहगेहकीर्तिवर्धनस्य कारणम्।
शुभांबुदप्रभासमम् सुकेतुवंशनाशकम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

चिदात्मकम् सुखात्मकम् निरामयम् निराश्रयम्
दिनेशवंशकीर्तिवृद्धिपोषणस्य कारणम् ।
वसुंधरात्मजायुतं तथा वशिष्ठशिक्षितम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

महेंद्ररुद्रविष्णुशक्तिचन्द्रमामरुद्गणा:
भजन्ति पूजयन्ति चैव सेवयन्त्यहर्निशम्।

समुद्रजाप्रियं सुपर्णगं भुजंगशायिनम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

स्वकान्तश्रापदग्धगौतमप्रियां मनोहराम्
जयंततातमर्दितां शुभां शिलास्वरूपिणीम्।
स्वपादरेणुनाहरच्च विप्रशापदुष्करम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

सहस्रसूर्यतेजयुक्तचन्द्रकोटिसुन्दरम्
प्रपन्नदेवधेनुभूमिवेदविप्ररक्षकम्।
भवार्णवैकतारकं तथा महेशवन्दितम्
सुलक्ष्मणान्वितं शुभं भजे किशोरराघवम्॥

 इति श्रीभागवतानंद गुरुणा विरचिते श्रीराघवेंद्रचरिते परशुरामकृतं किशोरराघवाष्टकम् सम्पूर्णम्

प्रश्नकर्ता :- गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि जिसकी मृत्यु हुई है, उसका पुनर्जन्म अवश्य होगा। फिर कहते हैं कि ज्ञान की प्राप्ति से हम पुनर्जन्म से बच सकते हैं। कौन सा सही है ?

श्रीभागवतानंद गुरु :- दोनों सही है। भगवान ने कहा
जातस्य हि ध्रुवोर्मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च...
कि जिसकी मृत्यु हुई उसका पुनर्जन्म होता है। लेकिन यह नहीं कहा कि जिसका मोक्ष होता है, उसका भी पुनर्जन्म होगा। पुनर्जन्म तो अटल है। परंतु जिसका मोक्ष हुआ उसका नहीं।
आदिगुरु शंकराचार्य जी ने कहा -
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा।
ज्ञान की प्राप्ति से देह और देही का भेद ज्ञात होता है। फिर देह और ब्रह्म की एकता का बोध होता है। इसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है। मृत्यु और मोक्ष में अंतर है। इच्छाएं बची रहें और शरीर नष्ट हो जाये, वह मृत्यु है। शरीर बचा रहे और इच्छाएं नष्ट हो जाएं वो मोक्ष है। पुनर्जन्म मृतक का होता है, मुक्त का नहीं। इसीलिए हमारे यहाँ जीवन्मुक्त शब्द है।

पलाश वृक्ष अथवा 'पलास', 'परसा', 'ढाक', 'टेसू' भारत के सुंदर फूलों वाले प्रमुख वृक्षों में से एक है। प्राचीन काल से ही इस वृक्ष के फूलों से 'होली' के रंग तैयार किये जाते रहे हैं। ऋग्वेद में 'सोम', 'अश्वत्थ' तथा 'पलाश' वृक्षों की विशेष महिमा वर्णित है। कहा जाता है कि पलाश के वृक्ष में सृष्टि के प्रमुख देवता- ब्रह्मा, विष्णु और महेश का निवास है। अत: पलाश का उपयोग ग्रहों की शांति हेतु भी किया जाता है। ज्योतिष शास्त्रों में ग्रहों के दोष निवारण हेतु पलाश के वृक्ष का भी महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। हिन्दू धर्म में इस वृक्ष का धार्मिक अनुष्ठानों में बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में पलाश के अनेक गुण बताए गए हैं और इसके पाँचों अंगों- तना, जड़, फल, फूल और बीज से दवाएँ बनाने की विधियाँ दी गयी हैं।
पलाश की पत्तियाँ आकार में अच्छी होती हैं, इसलिए बहुत-सी जगहों पर खाना परोसने के लिये पलाश के पत्तों का प्रयोग किया जाता है। इसकी लकड़ी को इमारती सामान बनाने के काम में लिया जाता है और फूलों से होली के समय पारम्परिक रूप से रंग भी बनाया जाता है। पलास के पेड को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र का प्रतीक माना जाता है और अनेक लोगों का विश्वास है कि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेने वाले लोगों को पलाश वृक्ष की पूजा करने से सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। पश्चिमी बंगाल में इसे वसंत और होली का प्रतीक माना गया है। ऐसा माना जाता है कि इस फूल का पलाशी नाम इतिहास प्रसिद्ध 'प्लासी के युद्ध' के कारण पड़ा है। आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में 'शिवरात्रि' के दिन शिव की पूजा में पलाश के फूल अर्पित करने की परंपरा है। केरल में इसे 'चमटा' नाम से भी पुकारा जाता है। चमटा संस्कृत के समिधा शब्द का मलयालम तद्भव रूप है और इसके अनुसार 'अग्निहोत्र' में पलाश की समिधा का प्रयोग होता है। मणिपुर में जब मेइति समाज का कोई व्यक्ति दिवंगत हो जाता है और किसी कारण से उसकी मृत देह प्राप्त नहीं होती, तब उस व्यक्ति के स्थान पर इस वृक्ष की एक शाखा का अंतिम संस्कार कर दिया जाता है।

श्रीरामेश्वरस्तोत्रम्

श्रीराम उवाच

सत्यं चिदानन्दमनंतमाद्यं ध्यानैकगम्यं निजबोधरूपम्।
कामारिमद्वैतमजेयवीर्यं रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

कैलाशशृंगे निजलीलया यः समाधिमाश्रित्य मनेन्द्रियाणि।
नियम्य चित्ते पुरुषं जगाहे रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

सत्वं रजं तामसयुक्तदेहं धृत्वा त्रिदेवा भुवनं दधीरन्।
यो कारणं ब्रह्महरीशभूत्या रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

यतः समस्ताखिल आगमाद्यास्तन्त्राणि विज्ञानयुतानि लोके।
भूत्वा प्रसिद्धिं भुवि प्राप्नुवन्ति रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

धत्ते तनुं तामसभावयुक्तं परन्तु कर्पूरसमैकशुभ्रम्।
गुणेन युक्तं खलु निर्गुणं तं रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

मृकण्डुपुत्राय सुदीर्घमायुं वृषाय वैश्वानरसद्दशाय।
मृत्युञ्जयं कालनियामकं वै रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

दशाननस्याननकोटिकर्ता भुजंगभष्मांगसुलिप्तदेवः।
समस्तभूतात्महृषीकधर्ता रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

दक्षस्य यो दक्षिणलोकहेतुर्दाक्षायणीदक्षिणभागयुक्तः।
संस्थापितो दक्षिणदिक्समुद्रे रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

चन्द्रार्धभागेन जटाकदम्बा हर्यन्घ्रिपुण्योदकनीचगायाः
सम्भ्रामयन्तीव रथांगमार्गं रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

करे दधन्तं विकरालशूलं पाशं भुशुण्डिं च पिनाकचापम्।
संवर्तकाग्निं भुवनान्तहेतुं रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

शम्भूग्रतेजो गिरिजापतीत्थं ब्रूते यदा भक्तियुतो मनुष्यः।
प्राप्नोति लोकं विबुधैरगम्यं रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

जानामि नो चेद्भगवन्स्त्वदीयं रूपं न जानाति तथाब्जयोनिः।
योऽसौ महादेवसुचन्द्रचूड़ः रामेश्वराख्यं शिवमेकमीडे...

इति निग्रहाचार्येणश्रीभागवतानंद गुरुणा विरचिते श्रीराघवेंद्रचरिते श्रीरामकृतं रामेश्वरस्तोत्रम् सम्पूर्णम्

श्रीहनुमान जी के विवाह के विषय में समर्थनात्मक विवेचन...

विगत कुछ दिनों से यह देखने को मिल रहा है कि बहुत से सनातनी जन श्रीहनुमान जी के सूर्यपुत्री सुवर्चला के साथ विवाह आदि के विषय में भ्रमित हो रहे हैं। मेरे इष्ट श्रीहनुमान जी हैं, हम दोनों का गोत्र भी समान है और साथ ही हम दोनों बाल्यकाल से ही एक दूसरे के प्रति सख्यभाव से रहते आ रहे हैं, साथ ही भगवान सूर्य का वंशज एवं महाराज भव्य वीरवर मेधातिथि की प्रजा होने से मेरे अनुसार इस विषय में जो बात हृदयगत होती है, उसके सन्दर्भ में यह लेख लिख रहा हूँ। इस लेख का उद्देश्य किसी का अपमान या कटाक्ष करना नहीं

है और न ही स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करना है।

महावीर हनुमान जी को बाल ब्रह्मचारी माना जाता है। यह बात पूरी तरह सत्य है लेकिन ऐसा नहीं है कि हनुमान जी अविवाहित थे। हनुमान जी का पूरी रीति रिवाज और मंत्रों के साथ विवाह हुआ था और इनका एक पुत्र भी था।लेकिन विवाह और पुत्र प्राप्ति में कोई संबंध नहीं है इसलिए विवाहित और पिता बनने के बाद भी हनुमान जी ब्रह्मचारी ही माने जाते हैं। अगर आप यह सोच रहे हैं कि यह संभव कैसे है तो आपकी यह दुविधा भी दूर हो जाएगी जब आप हनुमान जी के विवाह का रहस्य जानेंगे।

घटना तब की है जब हनुमान जी जब अपने गुरु सूर्य देव से शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उस दौरान सूर्य देव ने हनुमान जी के सामने यह शर्त रख दी कि अब आगे कि शिक्षा तभी प्राप्त कर सकते हो जब तुम विवाह कर लो। कारण यह था कि जहां तक हनुमान जी शिक्षित हो चुके थे उसके आगे की शिक्षा अविवाहित व्यक्ति को नहीं दी जा सकती थी। ऐसे में आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्राण ले चुके हनुमान जी के लिए दुविधा की स्थिति उत्पन्न हो गई। शिष्य को दुविधा में देखकर सूर्य देव ने हनुमान जी से कहा कि तुम मेरी पुत्री सुवर्चला से विवाह कर लो।

सुवर्चला तपस्विनी थी लेकिन पिता की आज्ञा के कारण सुवर्चला ने हनुमान जी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद रीति रिवाज और वैदिक मंत्रों के साथ हनुमान जी का विवाह संपन्न हुआ। हनुमान जी आजीवन ब्रह्मचारी रहने का प्रण ले चुके थे और दूसरी ओर उनकी पत्नी सुवर्चला तपस्विनी थी। ऐसे में हुआ यह है कि इनकी हनुमान जी की पत्नी विवाह के बाद वापस तपस्या के लिए चली गई। हनुमान जी ने विवाह की शर्त पूरी कर ली लेकिन गृहस्थ जीवन में नहीं रहे और आगे की शिक्षा पूरी की। हनुमान जी के विवाह का उल्लेख पराशर संहिता में किया गया है।

आंध्रप्रदेश के खम्मम जिले में हनुमान जी का एक प्राचीन मंदिर है। इस मंदिर में हनुमान जी के साथ उनकी पत्नी की भी मूर्ति बनी हुई है अर्थात् यहां पर हनुमान जी अपनी पत्नी के साथ भक्तों को दर्शन देते हैं। इस मंदिर को हनुमान जी के विवाह का इकलौता गवाह भी माना जाता है। मान्यता है कि हनुमान जी के इस मंदिर में आकर जो दंपति हनुमान और उनकी पत्नी के दर्शन करते हैं उनके वैवाहिक जीवन में चल रही परेशानियां दूर होती है। वैवाहिक जीवन में प्रेम और आपसी तालमेल बना रहता है।

श्रीरामानंदाचार्यवेदान्तपीठाध्यक्ष आदरणीय आचार्यश्री सियारामदास नैयायिक जी, जो भारतवर्ष के मूर्धन्य विद्वानों की प्रथम पंक्ति में गिने जाते हैं, उन महाराजश्री ने कुछ दिन पूर्व पराशर संहिता को अप्रामाणिक घोषित करते हुए श्रीहनुमान जी के विवाह की घटना को सर्वथा निर्मूल बताया है। आचार्यश्री से मेरी तनावपूर्ण परिचर्चा पूर्व में भी कतिपय धर्मपक्षों पर हो चुकी है तथा इस लेख में भी ऐसा होगा इस आशंका के कारण ही मैं बहुत दिनों से मौन था। परन्तु प्रतीत होता है कि समादरित भाव से अपने पक्ष को भी मैं सनातन मण्डल के समक्ष रख दूं।

आचार्यश्री ने पराशर संहिता के संदर्भ में उसे अप्रामाणिक घोषित करने के लिए अपनी वेबसाइट पर लिखे लेख में निम्न तर्क दिए हैं :-

१ :- यह एक अर्वाचीन ग्रन्थ है एवं वास्तविक प्रतीत नहीं होता।

समाधान :- १ :- यह ग्रंथ अर्वाचीन है, इसका कोई प्रमाण आचार्यश्री ने नहीं दिया है। साथ ही यदि उन्हें वास्तविक "प्रतीत" नहीं होता तो इसका अर्थ यह नहीं कि इससे ग्रंथ की अप्रामाणिकता सिद्ध हो जाती थी। आपने यह भी नहीं बताया कि इसके रचयिता यदि पराशर जी नहीं हैं तो फिर कौन हैं ? और जो हैं भी, तो उनके बारे में आपको कब और कैसे पता चला !! यदि पराशर जी ने स्वयं लिखा है तो कल्प के प्रारम्भ में लिखें या कल, प्रामाणिकता तो फिर भी रहेगी। अर्वाचीन होना और गलत होना, दोनों में भेद है। और यदि किसी अन्य ने कुछ समय पूर्व ही लिखा हो तो उसका नाम और परिचय प्रमाण सहित दें। यह बिल्कुल सामान्य सी बात है कि जिस तत्व के प्रति व्यक्ति की अश्रद्धा होती है उसके प्रति नकारात्मक दृष्टि हो ही जाती है। यथा, दयानन्द सरस्वती को पुराण अप्रामाणिक "प्रतीत" होते थे। श्रीमद्भागवत को अर्वाचीन मानकर बोपदेव की रचना बताते थे और समर्थन में कतिपय तर्क भी दे ही देते थे। तो प्रतीति प्रामाणिकता की परिचायक नहीं है।

दक्षिण भारत में ताल्लपाक अन्नमार्चार्युलु नाम के महान विद्वान कवि थे जिन्होंने भगवान श्रीनिवास की स्तुति में अनेक गीतों की रचना की, जो आज भी कर्णाटक संगीत के विद्वानों के संगीत जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। इनके गीतों में ११-१-४८ संख्यक गीत का आधार पराशर संहिता का इकत्तीसवां पटल है। गीत ११-१-१४९, ११-१-३६६, ३१ एवं १६३ के आधार क्रमशः पटल संख्या ४४,४५,४६,४७,४८ एवं ५० हैं।

समीरकुमारविजयम् के रचयिता कवि श्री पुष्पगिरि जी ने इसी पराशर संहिता का अनुपालन किया है। हनुमान महाविद्या जैसे ग्रंथ में

पराशर संहिता का उद्धरण प्राप्त होता है। रामायण सारोद्धार नाम ग्रंथ में अनेक स्थानों पर पराशर संहिता के उद्धरण प्राप्त होते हैं।

पराशर संहिता श्रीहनुमत्प्रभु के जीवन चरित्र एवं उपासना पद्धति पर आधारित श्रीपराशर मैत्रेय संवाद है। महर्षि पराशर एवं मैत्रेय मुनि के संवाद का संकेत श्रीविष्णुपुराण के प्रारम्भ में भी प्राप्त होता है। श्री विश्वनाथ सत्यनारायण रचित रामायण कल्पवृक्षमु के सुंदरकांड में हनुमान जी का वर्णन पराशर संहिता के अनुरूप ही किया गया है। इक्कीसवें पटल में वेंकटाचल एवं अन्य तीर्थ स्थानों का वर्णन स्कन्दपुराण एवं ब्रह्मपुराण के द्वारा समर्थित है।

कुर्तालम् के श्रीसिद्धेश्वरी पीठाध्यक्ष जगद्गुरू श्री शिवचिदानन्द भारती, तर्कवेदान्तसम्राट महामहोपाध्याय श्री मद्दुलपल्लि माणिक्यशास्त्री, आचार्य पुल्लेल श्रीरामचंद्रुडु, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विश्रांत आचार्य जोश्युल सूर्यप्रकाशराव एवं वेदांताचार्य गब्बीट आञ्जनेयशास्त्री, विद्यावारिधि अन्नदान चिदम्बरशास्त्री, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, लखनऊ के डॉ पी वी बी सुब्रमण्यम, महान हनुमदुपासक पालपर्ति सुब्बा वधानुलु आदि वरिष्ठ विद्वानों ने पराशर संहिता को प्रामाणिक एवं सर्वथा अनुकरणीय मानने के बहुत से प्रमाण एवं सन्दर्भ दिए हैं।

इन सबसे बढ़कर यह है कि वैष्णव सम्प्रदायों में से एक प्रमुख मध्व सम्प्रदाय के प्रवर्तक जो हनुमान जी के ही अवतार के रूप में प्रसिद्ध हैं, उन मध्वाचार्य जी ने पराशर संहिता पर भाष्य लिखा है। अतः इस ग्रंथ को अर्वाचीन, अप्रामाणिक या विक्षेपित कहना सर्वथा अनुचित है।

२ :- यह संहिता परस्पर विरुद्ध बातें कहती हैं।
समाधान :- २ :- इस संहिता में कौन सी बातें परस्पर विरोधी हैं, इसका संकेत आचार्यश्री ने नहीं किया है। साथ ही परस्पर विरोधी होने से अप्रामाणिक होने का कोई सम्बन्ध ही नहीं। अन्यथा सती देवी के देहत्याग की घटना से सहस्रों वर्ष पूर्व उनका सीता हरण के बाद श्रीराघवेंद्र सरकार से मिलना, मोहग्रस्त होना, और पार्वती के रूप में अवतरित होना ये सब बातें भी परस्पर विरोधी हैं। विषपान के समय शिव की अर्धांगिनी पार्वती नहीं सती थीं, ऐसा श्रीमद्भागवत में वर्णन मिलता है। इसका अर्थ यह है कि समुद्र मंथन के समय पार्वती का जन्म नहीं हुआ था। और समुद्र मंथन के बाद राहु का मस्तक काटा गया जिसके बाद वह समयानुसार सूर्य एवं चन्द्र से बदला लेता है। हनुमान जी भी सूर्य को निगलने गए तो उस समय राहु से मुठभेड़ हुई थी। सीता हरण के बाद श्रीराम जी से भेंट भी सती की हुई थी पार्वती की नहीं। फिर रावण ने श्रीरामावतार से लाखों वर्ष पूर्व जब कैलाश को उठाया था तो भगवती सती को भयाक्रांत होकर शिव का आलिंगन करना चाहिए था परन्तु वर्णन तो भगवती पार्वती का है। तो क्या परस्पर विरोधी बातें होने मात्र से श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भागवत या शिवपुराण आदि को आचार्यश्री अप्रामाणिक कह देंगे ?

आनंद रामायण में श्रीराम जी के राज्यकाल में ही रामभक्तों एवं कृष्णभक्तों के मध्य साम्प्रदायिक वाग्युद्ध का वर्णन है परन्तु श्रीकृष्णावतार तो अट्ठाईसवें द्वापर में हुआ था जबकि श्रीरामावतार का काल चौबीसवें त्रेता का है। महाभारत में वर्णन है कि विदुर जी ने वन में अपने शरीर का त्याग कर दिया एवं अपने तेज़ तथा इंद्रियों का समाहार युधिष्ठिर महाराज के भौतिक कलेवर में कर दिया। परन्तु श्रीमद्भागवत में युधिष्ठिर एवं श्रीकृष्ण जी के धराधाम त्याग के बाद विदुर जी के मैत्रेय ऋषि से मिलने का प्रसंग है। तो क्या यह बात परस्पर विरोधी नहीं होती है ? दोनों की रचना तो समकालीन दिव्यविभूति वेदव्यास जी ने ही की है। तो क्या हम इन ग्रंथों को भी अप्रामाणिक मानेंगे ?

कल्पभेद का आश्रय लेकर अनन्त निमित्त, गुण, उद्देश्य एवं घटनाओं के साथ अनन्त अवतार हुए हैं, और होते रहेंगे इस सत्य के साथ साथ जो जन आयाम जगत के सिद्धांत एवं कल्पभेद की बात को नहीं स्वीकारते उनके मन में ही ऐसी धारणा होती है। इसीलिए महाभागवत उपपुराण में कृष्ण को काली एवं राधा को शिव का अवतार बताया गया है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण को विष्णु का एवं श्रीमद्देवीभागवत में राधा को आद्या प्रकृति का अवतार बताया गया है। एक तो आचार्यश्री ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि उन्हें कौन सी बात परस्पर विरोधी लगी, और साथ ही उन्होंने यह भी नहीं बताया है कि इस प्रकार क्या केवल परस्पर विरोधी "प्रतीत" होने से अन्य ग्रंथ भी उनकी दृष्टि में अप्रामाणिक हैं ?

३:- इस संहिता में अन्य ग्रंथों के भाग हैं। रुद्रयामल, सुदर्शन संहिता आदि से सामग्री मिलती जुलती है। इसमें दिए गए हनुमत्सहस्रनाम, कवच, मंत्र आदि आनंद रामायण आदि के हैं।
समाधान :- ३ :- किसी ग्रंथ में किसी अन्य ग्रंथ का विषय सम्मिलित होने से उसकी प्रामाणिकता बढ़ती ही है, घटती नहीं। आचार्यश्री ने यह बात क्यों लिखी, मतिगम्य नहीं होती। यदि आचार्यश्री रुद्रयामल, सुदर्शन संहिता आदि को प्रामाणिक मानते हैं, जैसा कि वे वास्तव में हैं, और यह भी मानते हैं कि उनमें वर्णित मंत्र आदि ही पराशर संहिता में वर्णित हैं तो इनकी दृष्टि में एक ग्रंथ प्रामाणिक और दूसरा अप्रामाणिक कैसे हो गया, ये बात समझ नहीं आती।

जिस देवता का जो स्वरूप है, मन्त्र है, कवच सहस्रनाम आदि है वह यदि एकाधिक ग्रंथों में प्राप्त होता है, एकाधिक साधकों, ऋषियों के द्वारा प्रसारित होता है, तो इससे मन्त्र, विधि एवं पद्धति की सर्वमान्यता एवं प्रामाणिकता ही सिद्ध होती है न कि अर्वाचीनता या अप्रामाणिकता। कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतलम् की कथावस्तु में महाभारत की दृष्टि से विरोध है और पद्मपुराण की दृष्टि से अनुकरण। परन्तु इस दोनों बातों से न तो काव्यगौरव की हानि होती है और न ही उसे गलत कहा जाता है। कथाभेद तो महाभारत, रामायण एवं पुराणों में भी व्यापकता से है। परन्तु सुधीजन अर्थवाद के फेर में न फंस कर तत्ववाद का अनुशीलन करते हैं।

श्रीमद्देवीभागवत में भुवन कोष का जो वर्णन है, विष्णु पुराण, ब्रह्मपुराण आदि में जो वर्णन है, वह श्रीमद्भागवत से बिल्कुल मिलता जुलता है। श्रीमहाभागवत की देवी गीता, श्रीमद्भागवत की उद्धव गीता एवं महाभारत की श्रीमद्भगवद्गीता के भाव, और बहुत से श्लोक अक्षरशः समान हैं, तो क्या इससे उनकी अप्रामाणिकता सिद्ध होती है ? यदि ऐसा है तो क्या पूर्व भाष्यकारों ने अपने मत के प्रतिपादन हेतु भाष्यों में जितने ग्रंथों की बातों का संकलन किया है, इससे उनकी अप्रामाणिकता सिद्ध होती है ?

गोस्वामी तुलसीदास जी की श्रीरामचरितमानस में शिवपुराण, योगवाशिष्ठ, वाल्मीकीय रामायण आदि के बहुत से प्रसंग मिलते हैं, तो क्या इसके कारण हम ग्रंथ को अप्रामाणिक घोषित कर देंगे ? अपितु होता तो यह है कि इस प्रकार से उद्धरण देने से ग्रंथ की पुष्टि और वृद्धि ही होती है। श्रीहनुमान जी के चरित्रों का वर्णन एक कवि एक ही ग्रंथ में करे या अनेक कविगण अनेक ग्रंथों में करें, प्रामाणिक सभी हैं, वरेण्य सभी हैं।

४ :- अथर्वण, वाल्मीकीय रामायण आदि में हनुमान जी को ब्रह्मचर्य आश्रम वाला कहा गया है, फिर वे गृहस्थ कैसे ?
समाधान :- ४ :- श्रीहनुमान जी के ब्रह्मचर्य पर हमें न कोई आपत्ति है और न ही अविश्वास। अपितु हम तो यही मानते हैं कि वे ब्रह्मचर्य के मापदंड हैं, पराकाष्ठा हैं, अद्वितीय हैं। अपनी जितेन्द्रियता एवं ब्रह्मचर्य के कारण जगप्रसिद्ध महर्षि कण्व के मत से गायत्री, ब्राह्म, प्राजापत्य एवं बृहन् नामभेद से चार प्रकार के ब्रह्मचारियों की श्रेणी है। संयमित धर्माविरुद्ध काम का सेवन करने वाले सद्गृहस्थ को भी प्राजापत्य ब्रह्मचारी की संज्ञा दी गयी है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल अष्टविध मैथुन से विरत रहना नहीं है। यह तो भौतिक पटल पर न्यूनतम परिभाषा है। ब्रह्मवेत्ता, सर्वभूतब्रह्म दर्शी, आत्मानुभूति से युक्त व्यक्ति सर्वदा ब्रह्मचारी है। और परब्रह्म श्रीरामचंद्र जिनके रोम रोम से प्रत्यक्ष बसे हों, विश्वध्येय श्रीराम जी स्वयं जिनका ध्यान करते हों उन आञ्जनेय प्रभु से बड़ा ब्रह्मचारी कौन हो सकता है ? इसी व्यापक परिभाषा के कारण सुंदरकांड में श्रीराम जी को भी ब्रह्मचारी बताया गया है। अपि च..

कृष्णोऽष्टमहिषी भर्ता षोडशस्त्रीसहस्रकः।
अनादि ब्रह्मचारीति तथा विज्ञायते नरैः ॥

सोलह हजार एक सौ आठ सर्वांग सुंदरी स्त्रियों के पति होने के बाद भी अनादि भगवान श्रीकृष्ण को मनस्वी जनों ने ब्रह्मचारी ही जाना।

वानर गीतों में "माता सुवर्चला देवी, पिता मे वायुनन्दनः" आदि वचन पराशर संहिता के वचनों की पुष्टि करते हैं। शौनक संहिता में "आगच्छ हनुमद्देव त्वं सुवर्चलया सह" आदि उद्धरणों के आधार पर पराशर संहिता के अवलोकन के साथ कह सकते हैं कि श्रीहनुमान जी की भार्या देवी सुवर्चला अवश्य हैं। नाथपंथी, गोरक्षमत्स्येंद्रनाथ कथानक साहित्यों में सीता जी की आज्ञा से हनुमान जी के कई वर्षों तक त्रिया राज्य में सहस्र स्त्रियों के साथ रहने का वर्णन है, परन्तु उनके ब्रह्मचर्यव्रत में कोई बाधा नहीं आयी।

आचार्यश्री ने यह आपत्ति की है कि विवाह के बाद व्यक्ति गृहस्थ कहलाता है, ब्रह्मचर्य आश्रम वाला नहीं अतः हनुमान जी का विवाह हुआ ही नहीं, अन्यथा उन्हें अथर्वण में ब्रह्मचर्य आश्रम से युक्त नहीं बताया जाता। अब देखा जाय तो इस अनुसार ब्रह्मचारी तो पुत्रयुक्त भी नहीं होता। पुत्रवान् व्यक्ति भी गृहस्थ ही कहलाता है। हालांकि शिष्य, भाई के पुत्र, या आश्रित शरणागत को भी पुत्र कहा गया है अतः इस अनुसार हनुमान जी पुत्रवान हो सकते हैं, परन्तु यह बात यहाँ लागू नहीं होती क्योंकि मकरध्वज तो उनका शिष्य, भतीजा या शरणागत नहीं था। उनके स्वेद से जन्य तेज का प्रतिफल औरस अंश था। परन्तु इसके बाद भी हनुमान जी को ब्रह्मचारी ही कहा गया।

रामायण में सुग्रीव हनुमान जी को श्रीरामचन्द्र जी के पास भेजते हुए कहते हैं, "गच्छ जानीह भद्रं ते बटुर्भूत्वा द्विजाकृतिः" !! यहाँ पर जो भौतिक रूप से ब्रह्मचारी है, उसे ब्रह्मचारी बनने की कोई जरूरत नहीं होती। अतः सुग्रीव के वचनों का यह संकेत स्पष्ट समझ में आता है कि उन्होंने गृहस्थ हनुमान जी को ब्रह्मचारी बनने का आदेश दिया। सुंदरकांड में
"परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।

इयं खलु मतात्यर्थं धर्मं लोपं करिष्यति॥"
इस प्रकार कहने के कारण परदाराव्यवहार का भय विशेषकर दारयुक्त जनों को लगने की आशंका से हनुमान जी के विवाहित होने परन्तु फिर भी असंसर्ग संयमित होने का संकेत मिलता है।

५ :- सूर्यपुत्री तपती पुराणों में है, लेकिन सूर्यपुत्री सुवर्चला का वर्णन पराशर संहिता के अलावा अन्यत्र नहीं।
समाधान :- ५ :- बहुत से ऐसे पात्र हैं, घटनाएं हैं, कथानक हैं, जो किसी एक ही ग्रंथ या प्रसंग में बंध कर रह गए हैं। बहुत से ऐसे ग्रंथ एवं ऐसी टीकाएँ हैं, जो काल कवलित हो गयीं, अप्रकाशित हैं या केवल गूढ़ अदृश्यमती गुरूपरम्परा में संकुचित हैं। परन्तु इससे कोई बात अप्रामाणिक सिद्ध नहीं होती है। अद्भुत रामायण, अगस्त्य रामायण, आनन्द रामायण, भुशुण्डि रामायण आदि की बहुत सी कथाएं अन्यत्र प्राप्त नहीं होतीं। आचार्यश्री का मत स्वयं में विरोधाभासी है। एक ओर ये कहते हैं कि दूसरे ग्रंथ की बात यहाँ नहीं होनी चाहिए अन्यथा अप्रामाणिक हो जाएगा। फिर कहते हैं कि इसमें वर्णित बातें अन्यत्र भी होनी चाहिए अन्यथा अप्रामाणिक हो जाएगा। अतः यह मत भी बलहीन ही है।

६ :- सूर्यदेव ने विवाह के बाद कौन सी चार विद्याएं देने की बात की थी जो ब्रह्मचारी को नहीं दी जा सकतीं ?
समाधान :- ६ :- सूर्यदेव से हनुमान जी से सप्तकोटि महामंत्रों की शिक्षा ली थी। उनमें से सभी बातें मनुष्य के जानने योग्य नहीं हैं अतः सम्भवतः ग्रंथकार ने उसे कीलित ही रखा। अतः इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि वो चार विद्याएं क्या हैं। इसका उत्तर स्वयं श्रीहनुमान जी या सूर्यदेव ही दे सकते हैं। क्योंकि मनुष्यों के द्वारा न उन्हें जानना सम्भव है और न ही वांछित। श्रीहनुमान जी की शिक्षा सर्वसामान्य गुरुकुल के विद्यार्थियों की तरह नहीं थी कि विवाहपूर्व ही उपाध्याय महोदय ने भौतिक एवं किञ्चित पारमार्थिक उद्देश्यों के लिए नीति आधारित शिक्षा दे दी। परा, अपरा आदि भेद, चतुर्विध पुरुषार्थ सिद्धि के निमित्त विद्या, कला, शिक्षा आदि भेद से ज्ञान अनन्त है। और यह भी कि श्रीहनुमान जी जैसे रुद्रावतार शिष्य एवं स्वयं हरिस्वरूप श्रीसूर्यदेव जैसे गुरु जब ज्ञान का आदान प्रदान करें तो यह मानवमस्तिष्क में आ ही जाए और आवश्यक भी हो यह बात समुचित नहीं।

७ :- इस ग्रंथ में एक स्थान पर हनुमान जी के पिशाच बनने का वर्णन है, जो कदापि सम्भव नहीं लगती।
समाधान :- ७ :- इस तर्क से मुझे घोर निराशाजनक आश्चर्य हुआ क्योंकि यह बात सर्वविदित है कि श्वेतवाराह कल्प के सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें द्वापर के ८६३९६४वें वर्ष की मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को मध्याह्न में घटीद्वय के लिए श्रीहनुमान जी ने श्रीकृष्ण जी के श्राप एवं आदेशानुसार पिशाचत्व के प्राप्त करके श्रीमद्भगवद्गीता पर अति लघुकाय पैशाच भाष्य की रचना की थी जो आज भी प्रयत्नशील जनों के लिए उपलब्ध है। पराशर संहिता में श्रीहनुमान जी के पिशाचत्व की प्राप्ति की बात सर्वथा सही है। इस संदर्भ में पैशाच भाष्य का पुरी पीठाधीश्वर श्रीमज्जगदगुरु शंकराचार्य स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी भी समर्थन कर चुके हैं।

८ :- यह ग्रंथ दक्षिण भारत में प्रचलित है और दाक्षिणात्य जन बहुधा अनर्गल एवं अप्रामाणिकता की बातें करते हैं।
समाधान :- ८ :- यह मत मात्र आचार्यश्री के चिद्विलास का परिणाम है। यह विचार कि दाक्षिणात्य ने कहा, या दाक्षिणात्य ने समर्थित किया इसीलिए अमुक बात गलत है, यह कहना सर्वथा निंद्य है। क्योंकि यही केवल दाक्षिणात्य होना ही अप्रामाणिकता का परिचायक है तो प्रथम प्रश्नचिन्ह तो श्रीमज्जगदगुरु आदि शंकराचार्य पर ही लगेगा। अन्यान्य सहस्रों शैव, वैष्णव, शाक्त, कौल, सौर, गाणपत्य आचार्यों को गलत कह दिया जाएगा। पूर्व में आचार्यश्री अपने विरोधी पक्ष के प्रति व्यक्तिगत विचारों के कारण बहुत से सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित वर्गों के बारे में भी ऐसी ही बातें कह चुके हैं जो कदापि प्रशंसनीय नहीं है। ज्ञान या अज्ञान, सत्य या असत्य किसी एक जाति, आजीविका, सम्प्रदाय, क्षेत्र या भाषा का पक्षधर नहीं। वह तो व्यापक है, सर्वगम्य है एवं सनातन है। मैं किसी की अवहेलना या निंदा नहीं करता परन्तु जातिगत या क्षेत्रगत धर्मविरुद्ध आक्षेप को स्वीकार भी नहीं करता क्योंकि "दोषावाचा गुरोरपि" का निर्देश भी ऋषियों का ही दिया हुआ है।

श्रीहनुमान जी पत्नी से युक्त होते हुए भी नहीं हैं, पुत्रवान होते हुए भी नहीं हैं, गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं और ब्रह्मचारी होते हुए भी गृहस्थ हैं। यही उनकी महानता है। वाल्मीकीय एवं पाराशरी, दोनों पक्ष मान्य, श्रेष्ठ एवं सत्य हैं।

अञ्जनीसूनूं शंकररूपं कपिवर्यं, सिन्दूरारुणरक्ताभरणं धृतदण्डम्।
चित्ते सौमित्रं सीतासहितं रघुनाथं, श्रीहनुमन्तं मर्कटमूर्तिं प्रणतोऽस्मि...

लांगूलेन हता असुराः खलु संग्रामे, सन्तजना: लोके भयमुक्ता: कपिराज्ञा।
गायन्तं गुणनामादीन् दशरथसूनो:, श्रीहनुमन्तं मर्कटमूर्तिं प्रणतोऽस्मि...

स्वर्णगदां हस्ते धृत्वा भुवने सुभगो, पंचैकादशसप्तैकाननशुभरूपम्।

स्वर्णाभं धरणीधरतुल्यं प्लवगेशं, श्रीहनुमन्तं मर्कटमूर्तिं प्रणतोऽस्मि...

ॐ ॐ ॐ नमो नारायणाय...
इत्यलम्....

महायोगी कालहस्ति उवाच

वेदशास्त्रेतिहासेषु पुराणेषु च सर्वतः।
विश्वकर्मा जगद्धेतुरिति राजेन्द्र ! कथ्यते॥
अजायता जगत् सर्वं सृष्ट्यादौ विश्वकर्मणः।
स एव कर्ता विश्वस्य विश्वकर्मा जगत्पतिः ॥
प्रथमस्तु निराकारः ओंकारस्तदनंतरम्।
चिदानंदः परं ज्योतिः ब्रह्मानन्दस्तु पंचमः ॥
यस्मिन्भूत्वा पुनर्यस्मिन्प्रलीयन्ते भवन्ति च।
ज्योतिषां परमं स्थानं तत्परं ज्योतिरिष्यते ॥
पुष्पमध्ये यथा गन्धो पृथ्वी मध्ये यथा जलम्।
शंखमध्ये यथा नादो वृक्षमध्ये यथा रसः॥
तथा सर्वशरीरेषु अण्ववण्वंतरेष्वपि।
स्थित्वा भ्रमयतीदं हि तत्परंब्रह्म उच्यते ॥

महायोगी शिवावतार कालहस्ति ने कहा

हे राजन् !! वेद, शास्त्रों, इतिहास पुराण आदि सर्वत्र ही इस बात का उल्लेख है कि इस सारे संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय आदि कर्मों के कारणभूत विश्वकर्मा ही हैं। भगवान विश्वकर्मा द्वारा ही इस संसार की सृष्टि की गई है, इसीलिए समस्त विश्व के वे प्रभु ही कर्ता एवं स्वामी हैं। उनके पांच स्वरूप हैं जिनमें प्रथम भेदलीला निराकार है, तदनन्तर ओंकार स्वरूप है, तीसरा चिदानन्द, चौथा परमज्योति और पांचवां भेद ब्रह्मानन्द के नाम से कहा गया है। यह सारा संसार जिनसे जन्म लेकर फिर जिनमें लीन हो रहा है, और यह चक्र निरन्तर चल रहा है, उन ज्योतियों की परम ज्योति भी विश्वकर्मा ही हैं। जैसे पुष्प के अंदर गंध, पृथ्वी में जल, शंख में ध्वनि तथा वृक्षों में रस विद्यमान होता है वैसे ही सभी शरीरों एवं अणु परमाणु में स्थित रहकर उनको इस संसार में घुमाने वाले परब्रह्म विश्वकर्मा हो हैं।

विश्वं गर्भेण संधृत्वा विश्वकर्मा जगत्पतिः।
वटपत्रपुटे शेते यद्दशांगुलमात्रकः॥
बालार्ककोटिलावण्यो बालरूपी दिगम्बरः।
योगमायायुतो देवो विश्वकर्मा च पत्रके॥
आनाभिकमलं ब्रह्मा आकण्ठं वैष्णवी तनुः।
आशीर्षमीश्वरो ज्ञेयो विश्वकर्मात्र ईतनौ ॥
कराभ्यां स पदांगुष्ठं वक्त्रे निक्षिप्य चुम्बयन्।
योगनिद्रा समायुक्तो शेते न्यग्रोधपत्रके ॥
मूर्तिभेदेन जनितास्तद्देवा विश्वकर्मणः।
लक्ष्यन्ते पृथगात्मानो वेदेषु प्रतिपादिताः॥
एकमूले महावृक्षे जातास्ते च पृथक्सुराः।
लक्ष्यन्ते रूपभेदेन तारतम्य विशेषतः॥
पंचशाखा भवन्त्यादौ विश्वकर्म महातरोः।
शिवोमूर्तिर्मूर्तिमांश्च कर्ता कर्म च नामभिः॥
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
पंचब्रह्ममयं प्रोक्तमादीजं पञ्च शाखिनः॥
द्रुमसंस्थो जगत्कर्ता जगदुत्पादनोत्सुकः।

स्वार्थे शक्तिस्वरूपो भूत्साशक्तिः पञ्चधा भवेत्॥
तासां नामानि वक्ष्यामि आदि शक्तिरभूत्पुरा।
इच्छाशक्तिर्द्वितीयास्यात्क्रियाशक्तिस्तृतीयका॥
मायाशक्तिश्चतुर्थी स्यात् ज्ञानशक्तिस्तु पञ्चमी।
वसन्ति ताश्च शाखासु पञ्चब्रह्मासु सङ्गताः ॥
ब्रह्माणपञ्चपूर्वादि चतुर्दिक्षु च मध्यमे।
वसन्ति वक्त्रशाखासु शक्तिभिर्विश्वकर्मणः॥
ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
पंचानां ब्रह्मणाम् राजन् पंचैतेप्यधिदेवताः॥
पूर्वं तु शिवनामास्यममूर्तित्वस्य दक्षिणम्।
पश्चिमम्मूर्तिमन्ता च उत्तरे क्रतुनामकम्॥
मध्यं तु कर्मनामास्यं ब्रह्मणो विश्वकर्मणः।
एवमास्यानि जानीहि राजेन्द्र ! मतिमन्विभोः ॥
साकाररूपाण्येतानि निर्गुणस्य महाविभोः।
अनन्तानन्तवीर्यस्य ब्रह्मणो विश्वकर्मणः॥
(महाविश्वकर्मपुराण)

वे जगत्प्रभु विश्वकर्मा समस्त विश्व को अपने उदर में धारण करके दस अंगुल परिमाण के होकर वटपत्र पर शयन करते हैं। ऐसा लगता है मानो उन्होंने करोड़ों उदीयमान सूर्यों के तेज को धारण किया हो। वे दिगम्बर होकर अपनी योगमाया के साथ उस वटपत्र पर सोये हैं। उन गुणातीत विश्वकर्मा का वेदरूपी शरीर चरणों से नाभि तक ब्रह्मा के समान, नाभि से कंठ तक विष्णु के समान तथा कंठ से शीर्षभाग तक शिव के समान प्रतिभासित होता है। परब्रह्म विश्वकर्मा अपने हाथों से लीलापूर्वक अपने पांव का अंगूठा चूसते हुए बालरूप में योगनिद्रा से युक्त होकर वटपत्र पर शयित हैं। विश्वकर्मा के विग्रह से अलग अलग उत्पन्न हुए देवताओं को वेदों में अलग अलग रूपों में प्रतिपादित करके दिखाया गया है। एक ही मूल का विश्वकर्मा संज्ञक महावृक्ष है एवं उसके मूल से अनेक रूप एवं नामभेद के तारतम्य से जन्मे ये देवगण अनेक प्रकार के दिखाई देते हैं। विश्वकर्मा से सबसे पहले पांच भावों से युक्त शाखाओं का उद्भव हुआ जो शिव, अमूर्त, मूर्त, कर्ता एवं कर्म की संज्ञा से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव रूपी पञ्चब्रह्ममय जगत के नाम से प्रसिद्ध हुए। पूर्व में जिस विश्वकर्मा संसारवृक्ष की संस्था के विषय में कहा गया है, उन जगत्कर्ता ने संसार को उत्पन्न करने की आकांक्षा से अपनी काया को शक्ति का स्वरूप बनाया। वह शक्ति पांच प्रकार की है, जिनके नाम बताता हूँ। प्रथम आदिशक्ति है जो प्रारम्भ में रची गई। द्वितीय इच्छाशक्ति और तीसरी क्रियाशक्ति है। चौथी मायाशक्ति एवं पांचवीं ज्ञान शक्ति है। इन पांचों शक्तियों के रूप में शाखा रूप धारण करके वह पंचब्रह्म (मनु, मय, त्वष्ट, शिल्पी, विश्वज्ञ) सहित निवास करते हैं। उक्त मनु आदि पंचब्रह्म पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और उर्ध्व (मध्य) दिशाओं में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव रूपी आधिदैविक शक्तियों के साथ निवास कर रहे हैं। वह विश्वकर्मब्रह्म पूर्वादि क्रम से शिव, अमूर्ति, मूर्तिमान्, क्रतु तथा कर्म नामक मुख वाले हैं। हे राजन् सुव्रत !! इस प्रकार उन जगत्पति के नाम सहित मुख बताये गए हैं। इस प्रकार उन निर्गुण महाविभु का साकार स्वरूप जानना चाहिए जो अनन्त शक्ति से युक्त हैं।

(महाविश्वकर्मपुराण)

आजकल सर्वसाधारण सनातनी जनता मनमाना आचरण करने वाले छद्म धर्मगुरुओं से युक्त होकर अपनी आर्ष परम्परागत सम्प्रदाय यथा शांकर अद्वैत मत, रामानुज द्वैत मत, गोरक्ष कौल मत आदि से विमुख होते जा रही है। इस संदर्भ में निम्न शास्त्रावलोकन समीचीन है।

गुरुर्मंत्रस्य मूलं स्यान्मूल शुद्धौ तु तच्छुभम्।
सफलं जायते यस्मात् तस्माद् यत्नेन वीक्षयेत्॥
(कालिका पुराण)

गुरु ही मंत्र के मूल हैं। मूल के शुद्ध होने पर मंत्र भी शुभ एवं सफल होता है। इसीलिए यत्नपूर्वक गुरु बनाने से पहले उसके गुण दोषादि का विचार कर लेना चाहिये।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥
(महाभारत, उद्योगपर्व)

कार्य तथा अकार्य में ज्ञानरहित तथा उत्पथगामी गर्वित अभिमानी गुरु का त्याग उचित है।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्यकार्यमजानतः।
कामाचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः॥
(वाल्मीकीय रामायण, अयोध्याकाण्ड)
कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से रहित मनमानी करने वाले गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए।

गृहीतमंत्रस्त्यक्तो गुरुश्चेद्दोषसंयुतः।
महापातकयुक्तो वा गुरुदेवविनिंदकः।
त्यक्त्वा सर्वं प्रयत्नेन पुनर्ग्राह्यं यथाविधि॥
(यामल तंत्र)

यदि गुरु दोष से युक्त है अथवा महापातकयुक्त है अथवा अपने गुरु तथा देवताओं की निंदा करने वाला हो, तो उस स्थिति में प्रयत्न करके उसका त्याग करके पुनः यथाविधि नए गुरु का चयन करना चाहिए।

कल्याण का मार्ग ...

कल्याण के लिए, मोक्ष के लिए किसी जाति विशेष का होना आवश्यक नहीं है। ब्राह्मण वर्ण की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है और इससे मोक्ष की प्राप्ति सुलभ भी है किंतु यह एकमात्र मार्ग नहीं है। सद्गति सबों की हुई जो भी प्रपन्न भाव को अपना सका। वेद, स्मृति, पुराण, आगम आदि के विरुद्ध गए बिना, अपने कर्तव्य का पालन और अधिकारों का उपभोग करके कर्मयोग का आश्रय लेकर भी ब्रह्म की सिद्धि हो सकती है।

मंदोदरी च शबरी च मतंगशिष्या-
स्तारा तथात्रिवनिता निपुणा त्वहल्या ॥
कुन्ती तथा द्रुपदराजसुता सुभक्ता
एताः परं परमहंससमाः प्रसिद्धाः ॥
(गर्ग संहिता)

मंदोदरी (राक्षस की पुत्री और पत्नी),
शबरी (भील जाति की निरक्षर सीधी साधी महिला)
तारा (वानर साम्राज्ञी)
अहल्या (ऋषि पत्नी)
अनुसूया (परम उच्चस्तरीय साध्वी पतिव्रता)
कुंती (परम विदुषी राजमाता)
द्रौपदी (अग्निकुंड से उत्पन्न काली का अवतार)

जानते हैं इन सब की क्या गति हुई ? परमहंस जैसी सद्गति .. परमहंस संन्यास की सबसे बड़ी स्थिति है। आजकल तो कोई भी यह उपाधि लगा ले रहा है। लेकिन वास्तविक परमहंस और भगवान में इतना ही भेद है कि भगवान चमड़े की आंखों से नहीं दिखते और परमहंस दिखते हैं।

परमहंस के उदाहरण अष्टावक्र जी, शुकदेव जी, गोरक्षनाथ जी, लोमश मुनि, दत्तात्रेय भगवान आदि हुए हैं। इन बड़े बड़े अवतारी योगियों को जो मोक्षदायिनी सद्गति मिली, वही इन महिलाएं के लिए भी दी गयी। इतना ही नहीं, धर्मव्याध नामक कसाई, कणप्प नामक भील और तुलाधार नामक बनिया का भी उद्धार हुआ। रैदास जैसे चमार से लेकर नरसी मेहता जैसे व्यापारी का भी हुआ।

क्यों हुआ ? क्योंकि भगवान का केवल एक ही कहना है :-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

अपने अपने वर्णाश्रम के अनुसार कर्म करके ही मनुष्य कल्याण को प्राप्त करता है और वो कैसे होता है, ये सुनें !!
जहाँ से सम्पूर्ण ब्रह्मांड का जन्म हुआ है और जो इस ब्रह्मांड के प्रत्येक कण में व्याप्त है, उस परब्रह्म की पूजा करके ही मनुष्य कल्याण को प्राप्त करता है।

और कैसे करनी है पूजा ? स्वकर्मणा। अपने कर्म से। आपका कर्म क्या है ? दया, परोपकार, त्याग, सहनशीलता, धर्मरक्षा, असहायों की सेवा और सम्मान जैसे मानव धर्मों के साथ साथ अपनी जाति, वर्ण, आश्रम के द्वारा बताए गए कर्म को ही ईश्वर की सेवा मानकर करने कहा। इसी से मुक्ति है। यदि ये कर रहे हैं, तो बाकी देवालय आदि की पूजा भी सार्थक है अन्यथा नहीं। लेकिन कर्म करने की एक विशेष विधि भी बताई। वह विधि क्या है ?

यह कि भगवान का स्मरण बना रहे। जैसे हम जो भी कर रहे हैं, वह नर रूप में नारायण सेवा है, यह मानकर। मामनुस्मर युद्ध्य च। अपने लिए विहित हर कर्म करो किन्तु स्मरण ब्रह्म का बना रहे। इसके अलावा जो भी कमाओ, खाओ, दान करो, सेवा करो, सब के लिए भगवान को धन्यवाद देते हुए उसका फल, उसका श्रेय, उसका आभार भगवान के प्रति समर्पित करते रहो।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

हे अर्जुन ! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान करता है और जो तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर।

इतना ही करना है इस कलिकाल में। ये करना है मात्र। और क्या नहीं करना है ? दवा तो बता दी, अब परहेज सुनें।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधः तथा लोभ स्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

काम, क्रोध, तथा लोभ – ये तीन नर्क के द्वार, आत्मा की अधोगति करनेवाले हैं; इस लिए इनका त्याग करना चाहिए ।

एतैर्विमुक्त: कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नर: |
आचरत्यात्मन: श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ||

इनसे मुक्त होकर , पतन के तीनों द्वारों से बचकर आचरण करने से ही मोक्ष रूपी परम गति मिलती है। यह मानवमात्र के लिए है, कोई बंधन नहीं। हां, जहां शिक्षा देनी हो, धर्मरक्षा करनी हो, वहां दुष्टों के दमन हेतु, ज्ञान की प्राप्ति हेतु, सन्तुलित रूप से क्रोध, लोभ आदि का प्रदर्शन अनुचित नहीं, लेकिन वे आपके नियन्त्रण में रहें, आपको वे नियंत्रित न करने लगें। ॐ ॐ ॐ ...

शब्दों तथा वर्णों का महत्व ...

राजा हर्ष वर्मा से भूमि प्राप्त होने के बाद नारद जी ने मन ही मन विचार किया – स्थान तो मैंने प्राप्त कर लिया है, जो अत्यंत दुर्लभ था, अब मैं उत्तम ब्राह्मण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न प्रारम्भ करूँ । मुझे ऐसे ब्राह्मण देखने चाहिए जो सर्वश्रेष्ठ हों । इस बारे में वेदवादी विद्वानों के वचन इस प्रकार सुने जाते हैं – जैसे खेने वाले के बिना कोई नाव किसी प्राणी को पार उतारने में समर्थ नहीं है, उसी प्रकार जाति से श्रेष्ठ ब्राह्मण भी दुराचारी हो तो वह किसी का उद्धार नहीं कर सकता । जिसने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, वह ब्राह्मण तिनके की आग की आग के समान शीघ्र बुझ जाता है – तेजहीन हो जाता है । अतः उसे द्रव्य प्रदान नहीं करना चाहिए, क्योंकि राख में आहुति नहीं दी जाती । दान में ली हुई भूमि विद्याहीन ब्राह्मण के अंतःकरण को नष्ट करती है । इसी प्रकार गाय उसके भोगों का, सुवर्ण उसके शरीर का, घोडा उसके नेत्र का, वस्त्र उसकी स्त्री का, घृत उसके तेज का और तिल उसकी संतान का नाश करते हैं । अतः अविद्वान् ब्राह्मण को सदैव प्रतिग्रह से डरना चाहिए । मूर्ख ब्राह्मण थोडा प्रतिग्रह लेकर भी कीचड में फँसी हुई गाय की तरह कष्ट पाता है । इसलिए जो गूढ़ तपस्या से युक्त और गुप्त रूप से स्वाध्याय करने वाले हैं तथा जो शांत चित्त वाले हैं, उनको दिया हुआ दान सदा अक्षय होता है । केवल विद्या अथवा तपस्या से सुपात्रता नहीं आती । जहाँ सदाचार है और उसके साथ ये दोनों भी हैं, उसी को उत्तम पात्र कहा गया है ।

मैं देश देश में घूम कर विद्यानेत्र वाले ब्राह्मणों की परीक्षा करता हूँ । यदि वे मेरे प्रश्नों के उत्तर दे देंगे तब मैं उन्हें दान करूँगा, ऐसा विचार करके नारद जी उस स्थान से उठे और प्रश्नों को श्लोकबद्ध करके उनका गान करते हुए विचरण करने लगे। वे प्रश्न इस प्रकार हैं –

1. मातृका को कौन विशेषरूप से जानता है ? वह मातृका कितने प्रकार की और कैसे अक्षरों वाली है ?
2. कौन द्विज पचीस वस्तुओं के बने हुए गृह को अच्छी तरह जानता है ?
3. अनेक रूप वाली स्त्री को एक रूप वाली बनाने की कला किसको ज्ञात है ?
4. संसार में रहने वाला कौन पुरुष विचित्र कथावाली वाक्यरचना को जानता है ?
5. कौन स्वाध्यायशील ब्राह्मण समुद्र में रहने वाले महान ग्राह की जानकारी रखता है ?
6. किस श्रेष्ठ ब्राह्मण को आठ प्रकार के ब्राह्मणत्त्व का ज्ञान है ?
7. चारों युगों के मूल दिनों को कौन बता सकता है ?
8. चौदह मनुओं के मूल दिवस का किसको ज्ञान है ?
9. भगवान् सूर्य किस दिन पहली बार रथ पर सवार हुए ?
10. जो काले सर्प की भाति सब प्राणियों को उद्वेग में डाले रहता है, उसे कौन जानता है ?
11. इस भयंकर संसार में कौन दक्ष मनुष्यों से भी अत्यधिक दक्ष माना गया है ?
12. कौन ब्राह्मण दोनों मार्गों को जानता और बतलाता है ?

इस प्रकार नारद जी के बारह प्रश्नों को जिस जिस ने सुना उसने इन्हें अत्यंत कठिन मानते हुए इन्हें नमस्कार ही किया और कोई इसका समाधान नहीं कर पाया । इस प्रकार नारद जी को कोई भी उपयुक्त ब्राह्मण नहीं मिला । तब उन्होंने कलाप आश्रम जाने का निश्चय किया जहां सभी वेदाध्ययन से सुशोभित ब्राह्मण रहते हैं । यह सोच कर नारद जी ने कलाप आश्रम की ओर प्रस्थान किया ।

नारद जी के मन में शब्द शास्त्र और मातृका विज्ञान के बारे में बारह प्रश्न थे। उत्तर हेतु वे कलाप ग्राम पहुँचें। (कलाप ग्राम में ही देवापि और मरु तपस्या कर रहे हैं जो बाद में चन्द्र और सूर्यवंश को फिर जीवित करेंगे।)

वहां लोगों ने उनके प्रश्न का मज़ाक बनाया और कहा कि इसका उत्तर तो बच्चा भी दे सकता है। तब सुतनु नामक बालक ने कौथुम आदि के प्रसंग का उदाहरण देकर नारद जी के प्रश्नों का बहुत ही वैज्ञानिक और गूढ़ उत्तर दिया। वही प्रश्नोत्तर मातृका शास्त्र कहाई। इस प्रसंग को मैं कभी बाद में श्लोकबद्ध करके पूरे भाष्य के साथ लिखूंगा। मातृका शास्त्र सम्पूर्ण स्वर विज्ञान है।

मातृका शास्त्र को विशेष रूप से जानने की इच्छा वाले व्यक्ति इसकी व्याख्या के लिए स्कन्दपुराण, विज्ञान भैरव तन्त्र, शिव स्वरोदय, प्रपञ्चसार तन्त्र आदि का अध्ययन करें अथवा तांत्रिक व्याख्या के लिए आद्य शंकराचार्य जी की सौंदर्य लहरी पर तांत्रिक भाष्य पढ़ें।

दोनों ग्रंथों के अभाव में हमारे लेखन की प्रतीक्षा करें अथवा गुरुपरम्परा से सीखें। इसको गूढ़ता से जानने वाला वाक्सिद्ध योगी होता है। हमने अपने द्वारा लिखी जा रही शतोत्तरसाहस्री अप्रतिहत संहिता में वर्णमातृका रहस्य का वर्णन करते हुए आखिरी में इस प्रकार लिखा है।

वकाराद्वासुदेवश्च तथा वैशाखनंदनः।
शकाराच्छंकरश्चैव श्वा शकाराच्च निर्मितः ॥

वकार से ही वासुदेव शब्द भी बनता है और वकार से ही वैशाखनंदन (गधा) भी। शकार से ही शंकर शब्द भी बनता है, और शकार से ही श्वान (कुत्ता) भी।

श्वा वा मा शंकरो भूयाद्विष्णुर्वैशाखनंदनः।
तस्मादुच्चारणे काले नानृतं परुषं वदेत्॥

जिस प्रकार से शकार का प्रयोग शंकर की बजाय श्वान (कुत्ता) अथवा वकार का प्रयोग वासुदेव की बजाय वैशाखनंदन (गधे) आदि के उच्चारण में न लगे, इस हेतु शब्दों के उच्चारण के समय (बातचीत के समय) असत्य और गाली आदि कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

शब्दब्रह्मेति तं प्राहुः व्यासब्राह्मशुकादयः।

तस्योपासनया सिद्धिस्तस्माच्छब्दो महेश्वरः॥

उस शब्द को ब्रह्म, ऐसा व्यास, वशिष्ठ, शुकदेव आदि ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा है। इसीलिए उस शब्द (प्रणव ॐकार आदि की) उपासना से ही कल्याण की प्राप्ति होती है इसीलिए शब्द ही ब्रह्म है, वही महान् ईश्वर है।
(अप्रतिहत संहिता)

विश्व की किसी भी सभ्यता, पंथ या भाषा का इतना गूढ़, दिव्य, विस्तृत और महान् इतिहास नहीं रहा है। भारत के लोग अत्यंत सौभाग्यशाली हैं कि उन्हें इतने महान् योगियों की कृपा प्राप्त हुई हैं। जिस भारतभूमि में अनेकों तीर्थ, पतिव्रता स्त्रियां, सन्तोषी, त्यागी और उदार जन, विद्वान्, वीर और भक्तजन हैं, वह भारतवर्ष सम्पूर्ण कल्याण और मंगल की खान है। इस भारत का उसके मूल और तेजस्वी रूप में संरक्षण करना ही प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य होना चाहिए।

शास्त्रों में मातृका का जो सारसर्वस्व बताया गया है उसके अनुसार अकार से लेकर औकार तक जो चौदह स्वर हैं, वे चौदह मनुस्वरूप हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, छठे चाक्षुष, सातवें वैवस्वत (जो इस समय वर्तमान मनु हैं) , सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य – ये चौदह मनु हैं । श्वेत, पाण्डु, लोहित, ताम्र, पीत , कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, अधिक पिंगल, थोडा पिंगल, तिरंगा, बहुरंगा तथा कबरा – ये चौदह मनुओं के रंग हैं । वैवस्तव मनु ऋकार स्वरुप हैं । उनका रंग काला बताया गया है । ‘क’ ले लेकर ‘ह’ तक तैंतीस देवता हैं । ‘क’ से लेकर ‘ठ’ तक तो बारह आदित्य माने गये हैं । ‘ड’ से लेकर ‘ब’ तक जो अक्षर हैं वे ग्यारह रूद्र हैं । ‘भ’ से लेकर ‘ष’ तक आठ वसु माने गये हैं । ‘स’ और ‘ह’ – ये दोनों अश्विनी कुमार बताये गये हैं । इस प्रकार ये तैंतीस वर्ण देवता कहे गये हैं । अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय – ये चार अक्षर जरायुज (शरीर के साथ जन्म लेने वाले मनुष्य आदि), अंडज (अंडे से जन्म लेने पर पक्षी आदि), स्वेदज (प्रदूषण, गंदगी, पसीना, मल आदि से उत्पन्न जीवगण) और उद्भिज (पृथ्वी का भेदन करके जन्म लेने वाले वृक्ष आदि) ये नामक चार प्रकार के जीव बताये गये हैं ।

मनुष्य की वाणी से जो भी शब्दों का उच्चारण होता है, वह अपने आप में सृष्टि, पालन और प्रलय की सम्पूर्ण शक्ति को धारण किये होता है। अमोघवाचा (जो कह दिया, सो हो गया) योगियों के श्राप और वरदान का रहस्य उनकी मातृका साधना से ही है। जो पुरुष वर्णमातृका देवताओं का आश्रय लेकर कर्मानुष्ठान में तत्पर होते हैं वे ही सदाशिव में लीन होते हैं । जिस शास्त्र में पापी मनुष्यों के द्वारा ये देवता नहीं माने गये हैं, उस शास्त्र को साक्षात् ब्रह्मा जी भी कहें तो नहीं मानना चाहिये । अजितेन्द्रिय मनुष्यों के मोह की महिमा तो देखो, वे पापी मातृका पढ़ते तो हैं, शब्दों का उच्चारण तो करते हैं, परन्तु इन देवताओं को ही नहीं मानते, ऊपर से धर्म को नकारने के लिए भी शब्दों का ही प्रयोग करेंगे।

योगदर्शन के अनुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश पाँच क्लेश हैं।

अविद्याऽस्मिता रागद्वेषभिनिवेशा:पंच क्लेशा :

(योगदर्शन(

व्यास जी ने इन्हें विपर्यय कहा है और इनके पाँच अन्य नाम बताए हैंतम -, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र। इन क्लेशों का सामान्य लक्षण है कष्टदायिकता। इनके रहते आत्मस्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता। -

इनमें से विशेषकर अभिनिवेश के लक्षण के विषय में कहते हैं -:

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः

(योगदर्शन(

जो सहज अथवा स्वाभाविक क्लेश विद्वान् और अविद्वान् सभी को समान रूप से होता है वह पाँचवा क्लेश अभिनिवेश है। प्रत्येक प्राणीविद्वान्-, अविद्वान् सभी की आकांक्षा रही है कि उसका नाश न हो, वह चिरजीवी रहे। इसी जिजीविषा के वशीभूत होकर मनुष्य न्याय अन्याय, कर्म कुकर्म सभी कुछ करता है और ऊँच नीच का विचार न कर पाने के कारण नित्य नए क्लेशों में बँधता जाता है, वह क्लेश अभिनिवेश है।

शुक्र में चेतन का अभाव नहीं होता, रज में होता है। शुक्र का चेतन स्वतंत्र नहीं है, अपितु वह पुरुष की ही जीवनीय शक्ति का विस्तार करने वाला अंश है। उसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह पुरुष के ही जीवनीय शक्ति का अंश है। और जब वह योनि के माध्यम से गर्भ में प्रविष्ट होता है तो चुम्बक के समान आकर्षित होकर रजकण से आबद्ध हो जाता है और तब उसके अवयव स्त्री की जीवनीय शक्ति का अंश बन जाते हैं।

शुक्र और रज क्रमशः पुरुष और स्त्री के जीवनीय शक्ति के विस्तार विभाग, प्रजनन विभाग का अंश हैं। जीवात्मा अन्न के माध्यम से शुक्र में पहुंचता है और फिर वहां से रज से आबद्ध होता है। जीव का निर्माण नहीं होता, नाश नहीं होता। ये सब विकार देह के हैं, आत्मा के नहीं। जीव की स्थापना, उसका प्रवेश होता है। जीव हेतु बन रहा शरीर जब इतना सक्षम हो जाता है कि वह आत्मा को धारण करने में समर्थ हो जाये तो फिर जीवात्मा हृदय, कंठ आदि मर्मों का आश्रय लेकर वायु के समान उसमें व्याप्त हो जाता है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।

इस अनुसार जीव अविनाशी है, उसका नाश नहीं होता।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

इस अनुसार जीवात्मा जन्म और मृत्यु, निर्माण और विनाश से रहित है।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

इस अनुसार यह अजन्मा, नित्य, अविनाशी और प्राचीन है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

जिनका अन्त होता है विनाश होता है वे सब अन्तवाले हैं। जैसे मृगतृष्णादिमें रहनेवाली जलविषयक सत्बुद्धि प्रमाणद्वारा निरूपण की जानेके बाद विच्छिन्न हो जाती है वही उसका अन्त है वैसे ही ये सब शरीर अन्तवान् हैं तथा स्वप्न और मायाके शरीरादिकी भाँति भी ये सब शरीर अन्तवाले हैं। इसलिये इस अविनाशी अप्रमेय शरीरधारी नित्य आत्माके ये सब शरीर विवेकी पुरुषोंद्वारा अन्तवाले कहे गये हैं।

लेकिन इस जीवित पिंड में प्रथम तीन चार मास माता की जीवनशक्ति का अंश है और आत्मा के प्रवेश के बाद वह स्वतंत्र जीव का स्वतंत्र देह हो जाता है। हां, शेष गर्भकाल केवल इसीलिए है कि शरीर के सभी अंग बन सकें।

प्राणशक्ति जिसमें हो वही प्राण है। इस प्राण शक्ति का प्रत्यक्ष रूप श्वास है और यही श्वास जब विशेष रूप में शरीर से नियंत्रित और स्वचालित
न होकर मन से संचालित होने लगे तो प्राणायाम हो गया। प्राण का जीवात्मा से यही सम्बन्ध है कि यह शरीर में आत्मा की ऊर्जा को प्रसारित करने का कार्य करता है। प्राण शरीर और आत्मा के बीच सम्पर्क का माध्यम है।

प्राण न रहे, केवल आत्मा रहे, तो व्यक्ति कोमा में जा सकता है।
आत्मा न रहे, केवल प्राण रहे, तो मृत देह कभी सड़ेगा नहीं।

इसीलिए मृत्यु वही है जहां प्राण और आत्मा दोनों साथ निकलें। इसीलिए कहते हैं, प्राण पखेरू उड़ गए। यहां पखेरू शब्द उसी पक्षी रूप हंस जीव का वाचक है।
प्राण न रहे इसका अर्थ ये नहीं कि प्राण है ही नहीं। अपितु प्राण उस स्तर तक क्रियाशील नहीं है।

जैसे विकलांग के भी पैर होते हैं, गूंगे का भी वौइस बॉक्स और मुंह होता है, लेकिन उस स्तर का क्रियाशील नहीं रहता। आत्मा और शरीर के मध्य जिस स्तर का प्राण चाहिए, उतनी पर्याप्त प्राण शक्ति न रहने को ही मैंने प्राण का अभाव बताया है, क्योंकि ऐसे में शरीर आत्मा की ऊर्जा से संचालित होने वाले मुख्य कार्य नहीं कर पाता।

दो बार जाता नहीं है। जाता एक ही बार शुक्र के माध्यम से है लेकिन वह अति सूक्ष्म प्रारूप में केंद्रित रहता है। वही पन्द्रह सप्ताह में अचानक से निर्मित देह में मस्तिष्क के आधार पर व्याप्त हो जाता है।

प्राणः प्राणयते प्राणं
(अग्नि पुराण(
प्राण वह तत्व है, जिसकी उपस्थिति से शरीर की चैतन्यता प्रत्यक्ष होती है।

जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्द्धते।
(वायुपुराण(
जल से प्राण उत्पन्न होता है और यह प्राण ही आगे प्रजनन शक्ति का धारक भी है।

किन्तु केवल जल से नहीं, अपितु जलयुक्त देह से ही यह वायुरूप में उत्पन्न होता है।
प्राणः स्वदेहजो वायु:
(अग्नि पुराण(

शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि के लक्षण सामने आने लगते हैं। केवल पढ़ने नहीं कहा, धारण, उहापोह, अर्थविज्ञान, बोध और आचरण की भी बात है। धारण करने का कार्य पहले इंद्रियों के माध्यम से मन में जाता है। वहां मन में उहापोह होता है, जिसके बाद अधिक शुद्ध होकर वह तथ्य बुद्धि के पास अर्थविज्ञान हेतु जाता है। अर्थविज्ञान दृढ़ होने पर अहंकार तत्व उसे चित को साक्षी और संग्रहण हेतु निमित्त बनाकर आचरण में प्रवृत करता है। इस पूरी प्रक्रिया में लगे सभी मन आदि तत्वों की श्रृंखला या समूह की 'धी' संज्ञा है। यदि मन के मध्य हुए उह एवं अपोह में धर्म का पक्ष (उहापोह या पक्षापक्ष) तो उसे सुधी या विवेक कहते हैं। इसके विपरीत होने पर कुधी या अविवेक कहते हैं। इसीलिए अर्थविज्ञान से सिद्ध हुआ विवेकी लोगों को सुधिजन भी कहते हैं।

शास्त्रों का आश्रय लेकर ही धर्म और अधर्म दोनों किये जा सकते हैं, बुद्धि की निश्चयात्मिका शक्ति का पलड़ा जिधर भारी हुआ, उधर से। इसीलिए कश्यप की ही सन्तान होने पर भी सुर और असुर में भेद हो गया। आपके चिंतन से सूर्य प्रकाशहीन तो नहीं हो जाएगा। या फिर विष्ठा सुगंधित तो नहीं हो जाएगी। जो जैसा है, वैसा ही रहेगा। आपकी धारणा आपका दृष्टिकोण मात्र है। वह सत्य के अनुकूल भी हो सकती है, प्रतिकूल भी हो सकती है।

यदा पुनर्निश्चिनुते तदा सा स्याद्बुद्धिसंज्ञा।
(प्रपञ्चसारतंत्र, प्रथम पटल,१०३(

निश्चयात्मिका होने पर प्रकृति की बुद्धि संज्ञा होती है। जब इसके निश्चय का माध्यम आत्मोद्धूत होता है तब यह स्वप्रत्यनेया है, अन्यथा परप्रत्यनेया।

स्वप्रत्यनेया ष्म द्वारा अम्बा आदि का हरण।भी -:
परप्रत्यनेया -: शूर्पणखा के प्रेरित करने पर रावण द्वारा सीता जी का हरण।

कर्म दोनों समान है, लेकिन कर्म की प्रेरणा में स्रोत भेद है। यहाँ यदि आपको उदाहरण नकारात्मक लगे, तो मोक्षपरक एवं ब्रह्मविद्या के उदाहरण में ऐसे समझें।

स्वप्रत्यनेया वामदेव एवं दत्तात्रेय जी की ब्रह्मज्ञान हेतु बुद्धि की अन्तःस्थित प्रेरणा। -:
परप्रत्यनेया नचिकेता एवं इन्द्र आदि की ब्रह्मज्ञान हेतु ब -:ुद्धि की बाह्याचारों से उद्भूत प्रेरणा। (यमराज एवं उमा)

परेण धाम्ना समनुप्रबुद्धा मनस्तदा सा तु महाप्रभावा,
यदा तु सङ्कल्पविकल्पकृत्या यदा पुनर्निश्चिनुते तदा सा।
स्याद्बुद्धिसंज्ञा च यदा प्रवेत्ति ज्ञातारमात्मानमहंकृतिः स्यात्,
तदा यदा सा त्वभिलीयतेऽन्तश्चित्तं च निर्धारितमर्थमेषा॥
(प्रपञ्चसारतंत्र, प्रथम पटल, १०२(१०३-

साक्षी, कारण तथा अंतर्यामी के रूप में परं धाम चिद्रूप पुरुष के साथ सम्बद्ध महाप्रभावशालिनी यह प्रकृति जब संकल्प-विकल्प करती है तब इसे मन कहा जाता है। निश्चयात्मिका होने पर बुद्धि और कर्ताभिमान से युक्त होकर पुरुष के स्थान पर स्वयं को कर्ता मानने पर अहंकार कहलाती है। साक्षीभूत आत्मा में लीन होने पर इसी प्रकृति की चित्त संज्ञा हो जाती है।

संस्कार उन सूक्ष्म स्मृतियों को कहते हैं जो हमारे कर्मफल के कारण हमारे चित्त में सुरक्षित हो जाते हैं। वे भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी समाप्त नहीं होते और नवीन शरीर के साथ पुनः जागृत होते हैं।

इन संस्कारों के दो भेद होते हैं, आगत एवं अर्जित। आगत संस्कार पिछले कर्मफल के समूह होते हैं जो प्रारब्ध रूप में साथ चलते हैं। अर्जित संस्कारों के चार समान भाग होते हैं -:

अपनी स्वयं की बुद्धि जो वस्तुतः आगत संस्कारों से प्रेरित होती है।
जीवन के अलग अलग परिस्थितियों में बिताए गए समय के अनुसार मिली चित्तवृत्तियां।
साथ में बिताए गए कर्मचारी, सहपाठी, पड़ोसी, गुरुजन आदि की संगति के प्रभाव।
आहार, चिंतन, आदि के कारण बने शरीर में ऊर्जा प्रवाह आदि।

आप अपने नेत्र खुले रहेंगे तो आप ही केवल सबको देख सकते हैं। ऐसे ही जिसे आत्मबोध होगा केवल वही सबों को ब्रह्म

देख सकता है। लेकिन आप यदि दिल्ली में आंख खोलकर एक बार देख लें और मुंबई में खड़े होकर बन्द कर दें तो आपको मुम्बई नहीं दिखेगी। ऐसे ही आत्मबोध जिस रूप में हुआ है उसी रूप में आपको ब्रह्मदर्शन होगा। जिस जिस स्थान या रूपभेद में आपने नहीं खोला, वहां नहीं दिखेगा।

अद्वैतं ते परं रूपं वेदागमसुनिश्चितम्।
नमामो ब्रह्म विज्ञानगम्यं परम गोपितम्॥
सृष्ट्यर्थं सशरीरा त्वं प्रधानं पुरुषस्वयम्। :
कल्पितं श्रुतिभिस्तेन द्वैतरूपा त्वमुच्यसे॥

ब्रह्म अद्वैत है, यही परमसत्य है किंतु जब वह सृष्टि हेतु सगुण रूप धारण करता है तो हम उसे द्वैत के रूप में कल्पित कर लेते हैं ऐसा वेद और तन्त्र का निश्चय है।
(महाभागवत में द्वैताद्वैत की शंका के सन्दर्भ में त्रिदेवों का एकमत से निर्णय(

जैसे स्फटिक के ऊपर लाल फूल रखने से स्फटिक भी लाल वर्ण का प्रतीत होने लगा लगता है वैसे ही बुद्धि और इन्द्रिय के सानिध्य से आत्मा की भी वैसी ही विकृतियुक्त प्रतीति होती है। वस्तुतः मन, बुद्धि एवं अहंकार ही फल के भोक्ता हैं किंतु उनसे अपने आप को भिन्न न मानने के कारण वह उपभोग आत्मा को प्राप्त होते प्रतीत होते हैं -:

बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनोऽपि तथा गतिः।
मनोबुद्धिरहंकारो जीवस्य सहकारिणः॥
स्वकर्मवशतस्तात फलभोक्तार एव ते।
सर्वं वैषयिकं तात सुखं वा दुःखमेव वा॥
(महाभागवत(

जैसे जल के साथ ठंडक हो जाने से हम उसे बर्फ के रूप में ठोस देखने लगते हैं ऐसे ही मन आदि से युक्त होकर आत्मा भी सविकार लगने लगता है। जल का गुण ही शीतलता है। बर्फ में उसका गुण ठंडक नहीं, तुषार कहाता है। जल में तुषार या ऊष्मा की प्रतीति शीत या ताप आदि गुणों के कारण है जबकि शीतलता उसका सहज स्वभाव है। ऐसे ही आत्मा जब चित्त आदि से युक्त होती है तो उपभोक्ता के जैसे प्रतिभासित होती है। जैसे रस्सी में सांप की प्रतीति होने पर भय लगता है किंतु आपके भय के कारण रस्सी आपको काट नहीं सकती, भले ही आपका भय कितना भी वास्तविक क्यों न हो, ऐसे ही आत्मा केवल सुख दुख आदि का उपभोग करने वाली लगती है, चाहे वह अनुभव कितना भी वास्तविक क्यों न लगे, उसका प्रभाव आत्मा पर नहीं पड़ता यदि वह मोहमुक्त है तो।

ज्ञान ही ब्रह्म है और ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है। अज्ञान कोई अलग तत्व नहीं है। अज्ञान एक स्थिति है जो माया से निर्मित है। आप स्वयं को देह से भिन्न नहीं देख पा रहे जबकि ज्ञानी देख पा रहा है। इसीलिए भ्रम के कारण आपने अनेकों जन्मों में मृत्यु का स्वाद चखा है और उसके अनुभव से परिचित होने के कारण भय लगता है। ऊपर हमने योगदर्शन की इसी बात को अभिनिवेश के नाम से कहा।

भ्रम से ही भय होता है। यह भ्रम ही है कि आप देह हैं। यह भी भ्रम ही है कि आपकी मृत्यु होती है। आपको ज्ञात नहीं कि आप देह नहीं हैं, और मृत्यु देह की होती है। इसीलिए भ्रम से भय होता है।, ज्ञान से अभय होता है। जैसे स्वप्न में भोजन करने से यहां पेट नहीं भरता। स्वप्न में नहाने से यहां नहीं भीगते, वैसे ही जगत के भोगों के प्रति आत्मा निर्लेप रहती है।

शिव जी ने माहेश्वर तंत्र में यह बात कही है कि द्वैत वालों का जीवन अद्वैत के खण्डन में और अद्वैत वालों का जीवन द्वैत के खण्डन में बीतता है। एक दूसरे के खण्डन की बजाय ब्रह्मचिन्तन करें तक अधिक सार्थक होगा, यह बात है।

हर चिंतन बुद्धि नहीं है। हर सोच जो है वो बुद्धि नहीं, भ्रम है। बुद्धि बोध कराने वाले चिन्तन को ही कहते हैं, किसी भी चिंतन को नहीं। बुद्धि तभी सार्थक है, उसकी निश्चयात्मिका शक्ति तभी सार्थक है जब वह चित्त के साक्षीभाव को प्रधान बनाकर अहंकार के कर्ताभाव पर हावी कर दे।

जैसे आप भोजन करते हैं, तो उसे पचाने में आपको क्या कभी कर्ताभाव आया ?? रात को सोये हुए जब सांस लेते हैं तो कभी कर्ताभाव आया ? उसी सिस्टम को इधर लेकर आना है। मान लें कि आप पूजन करने बैठे। और सामने कोई अति भूखा असहाय बैठा है और आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं तो आपकी पूजा भी भ्रष्ट हो गई । भगवान को विश्वात्मा कहा गया। विश्व की आत्मा वही हैं और विश्व में सर्वत्र वहीं आत्मरूप से भी हैं। इसीलिए मूर्तिपूजा का भाव ही यही है कि जड़ चेतन, सर्वत्र ब्रह्मभाव पुष्ट हो।

जीव को यह अनुभव होना चाहिये कि वह ब्रह्म ही है किंतु उसमें जीवत्त्व का आरोपण हो गया है, और उस जीवत्व का कारण उसकी ही आत्मशक्ति, माया है। और यदि यह अद्वैतमत समझ न आये, द्वैतभाव बना रहे तो भक्तिसूत्र का आश्रय लेकर साधना करे, जाने अनजाने स्मरण बनाये रखने का काम करे। सोकर उठने के बाद, जम्हाई लेने के बाद अनजाने में बिना भक्ति के नाम लेते हैं न। या घृणा की वस्तु को देखकर भी राम राम शब्द तो निकलता ही है। यही धोखे से नाम लेना हुआ।

जप और स्मरण में भेद समझें। मामनुस्मर का भाव जो गीता में कहा, उसे जप नहीं कहते। और यदि कहें भी तो वे अजपाजप कहायेंगे। यानी बिना जपा हुआ जप। जप हेतु सदैव माला, कम से कम करमाला तो प्रयोग करना ही चाहिए, अन्यथा उस जप की राक्षसी संज्ञा होती है।

लेकिन यह बात अद्वैती के लिए नहीं। विंशतिका शास्त्र में आचार्य वाग्भव ने उदाहरण दिया है। बांझ औरत का बेटा मरे या जिये, क्या हानि और क्या लाभ ? वैसे ही अद्वैती के लिए संसार रहे न रहे, क्या हानि, क्या लाभ ? जैसे बांझ औरत का बेटा अपने आप ही मिथ्या है, वैसे ही अद्वैती के लिए संसार। जिसके लिए संसार ही मिथ्या है, उसके लिए क्या संसारजन्य गुण और दोष ?

अभेद दो में होता है, एक में नहीं। जीव बिम्ब है ब्रह्म का। जैसे आपका बिम्ब दर्पण में बनता है वैसे ही ब्रह्म का बिंब माया में बनता है। बिम्ब का वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं, वो बस उसकी प्रतीति मात्र है। प्रतीति ही भ्रम है और इसी का नाश ब्रह्मज्ञान है। यहाँ अद्वैत वाले भी भेद नहीं बताते, भेद की प्रतीति बताते हैं।, और उसी प्रतीति के नाश का उपाय भी। जैसे रस्सी में सांप की प्रतीति होती है और उसी प्रतीति का नाश तत्वज्ञान है।

अद्वैत मत वाले के लिए भेद करना मना है। द्वैत वाले तो कर ही सकते हैं। जैसे ब्राह्मण शराब पिये तो अधर्म, जबकि शूद्र के लिए नहीं। शूद्र वेद पढ़े तो अधर्म, लेकिन ब्राह्मण के लिए नहीं। जो अद्वैत मत का अनुयाई है, वह भेद नहीं देखे, यह भाव है। लेकिन उसके अभेदबुद्धि का परिणाम वेदोक्त लौकिक मर्यादाहनन में लक्षित न हो, यह भी स्मरणीय है। जीवत्व की स्थिति में चेतन कार्याभिमान से युक्त हो जाता है इसीलिए कर्ता भाव का रोपण उसमें हो जाता है। ब्रह्मत्व की स्थिति में उस कार्यभेदजनक अभिमान का नाश हो जाता है इसीलिए वह अकर्ता है।

हमारा, जब आप स्वरूप कहते हैं, तो वह सदा साकार ही होता है। रूप है तो आकार के साथ ही होगा। इसीलिए स्वरूप सही शब्द नहीं। ऐसे कहिये, कि हम निराकार हैं, लेकिन प्रकृति जन्य गुणों के कारण स्वरूप धारण करके साकार के समान लक्षित होते हैं। यदि वास्तव में साधक उस स्थिति में पहुंच गया है, तो दया और क्रोध दोनों से मुक्त रहेगा। वह ब्रह्म हो जाता है, और ब्रह्म का स्वभाव शिव है, शिव मतलब कल्याणकारी। इसीलिए कल्याण हेतु वह दया या क्रोध करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।

स्वभावोऽध्यात्म उच्यते स्वभाव ही अध्यात्म है। हम जीजस की तरह जीव को काल्पनिक पाप से युक्त नहीं बताते ..., नहीं कहते कि तुम्हारा मूल रूप ही पाप से युक्त है। हम मुहम्मद की तरह उससे बचने के लिए अपनी पैरवी नहीं लगवाते, हमने जन्नत का कॉन्ट्रैक्ट नहीं दिया, कोई मुक्तिपत्र नहीं बांटते। हम तो अध्यात्म का अर्थ मूल शुद्धता, मूल नित्यता एवं कूटस्थता, अपना वास्तविक मूल स्वभाव ही मानते हैं।

अधि शब्द एक उपसर्ग है, जिसका प्रयोग नियंत्रण के अर्थ में किया जाता है। अधि उपसर्ग जब आत्म शब्द से...